इकाई 1

कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग)

भाषा शैली तथा काव्य–सौन्दर्य, शिव–पार्वती संवाद तथा पात्रों का चरित्र–चित्रण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

महाकवि कालिदास एक विश्वविख्यात कवि हैं और उनका 'कुमारसम्भव' महाकाव्य एक कालजयी ग्रन्थ है। इस काव्य में शिव–पार्वती के विवाह और कुमार कार्तिकेय के सम्भव (उत्पत्ति) की कथा वर्णित है। सत्रह सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन है। इस इकाई के अध्ययन से छात्र कालिदासीय भाषा–शैली व काव्यसौन्दर्य के साथ–साथ शिव–पार्वती संवाद के माध्यम से पार्वती के अनुकरणीय, स्पृहणीय, श्लाघनीय चरित्र से परिचित हो सकेंगे तो शिव के अलौकिक, विलक्षण विस्मयकारी चरित्र की भी थाह पा सकेंगे। छात्र कालिदास के इस अमर सन्देश को भी हृदयङ्गम कर सकेंगे कि कार्यसिद्धि हो जाने पर किसी कार्य के निमित्त किया गया सारा क्लेश काफूर हो जाता है– '**क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।**'

1.1 प्रस्तावना

काव्य के प्रति रुचिमान् सामान्य व्यक्ति भी महाकवि 'कालिदास' और उनके 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के विषय में यत्किञ्चित् अवश्य जानता है और अवसर मिलने पर जानना चाहता है।। काव्यरसिक तो जन्मजन्मान्तर में कालिदास की कविता सुनने की कामना करते हैं – '**कालिदास कविता भवतु मे जन्मजन्मनि।**' काव्यविद्या के जो मर्मज्ञ कवि या समीक्षक हैं उनके लिए तो कालिदास के काव्य मानदण्ड ही हैं।

'कुमारसम्भव' कालिदास के दो महाकाव्यों में से अन्यतम है। सत्रह सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के प्रारम्भिक आठ सर्गों को ही कुछ विद्वानों ने कालिदास–प्रणीत माना है। इसके नायक शिव हैं जो कि 'धीरोदात्त' नायक के सभी गुणों से विभूषित एक दिव्य पुरुष हैं। इस काव्य का प्रधान रस (अङ्गीरस) शृङ्गार है तथा करुण व शान्त आदि गौण रस (अङ्गरस) है। इसकी कथावस्तु पुराणों से ली गई होने से ऐतिहासिक कथावस्तु है, जिसमें कवि ने अपनी कल्पना के रंग भरे हैं। इसमें ऋतुओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्यों का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। कुमार कार्तिकेय के जन्म की घटना पर आधारित होने के कारण इस काव्य का 'कुमारसम्भव' नाम भी सार्थक है – '**कुमारस्य सम्भवः जन्म**

यस्मिन् तत् कुमारसम्भवम्।'

कालिदास की भाषा ही उनके काव्यसौन्दर्य का मूल है। लगभग 2000 वर्षों के पश्चात् भी उनकी भाषा व शैली में पाठकों को क्लिष्टता नजर नहीं आती। उनकी सूक्तियाँ लोगों को सदा जिह्वाग्र रहती हैं। बाणभट्ट जैसे समर्थ लेखक ने भी कालिदासीय सूक्तियों के प्रति प्रीति प्रकट करते हुए उन्हें मञ्जरी (कली) बताया है –

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिसु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

चरित्र–चित्रण में भी कालिदास अद्वितीय हैं। कोमल व सुकुमार भावों की व्यञ्जना में वे दक्ष हैं। इसीलिये '**प्रसन्नराघव**' के कर्त्ता जयदेव ने उन्हें कवितारूपी कामिनी का विलास बताया है – '**कविकुलगुरु : कालिदासो विलासः।**' तो अब प्रस्तुत है कालिदास के कुमारसम्भव के पञ्चमसर्ग के सन्दर्भ में कतिपय निर्धारित विषय–बिन्दुओं का विवेचन –

1.2 भाषा–शैली

कुमारसंभव महाकाव्य कालिदास की उत्कृष्ट काव्यशैली का परिचायक है। कथावस्तु पर महाभारत का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। महाकाव्य में कुल सत्रह सर्ग हैं किन्तु आठ सर्ग ही कालिदास रचित माने जाते हैं। भाषा शैली, भावाभिव्यञ्जना की दृष्टि से पीछे के नौ सर्ग किसी अन्य कवि की रचना प्रतीत होते हैं जो संभवतः महाकाव्य के सकल लक्षण इस पर घटित करने हेतु जोड़ दिए गए। मल्लिनाथ की टीका भी प्रथम आठ सर्गों पर ही प्राप्त होती है।

कालिदास की भाषा सरल, सुबोध, सरस, परिष्कृत, प्राञ्जल, परिमार्जित तथा प्रसादगुणपूर्ण है। उसमें क्लिष्टता अथवा दूरान्वय दोष कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है। सर्वत्र पात्र के अनुरूप ही उन्होंने भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने भाषा की दृष्टि से कहीं भी पाण्डित्य–प्रदर्शन नहीं किया है। स्थान–स्थान पर ऐसे मुहावरेदार तथा चुस्त प्रयोगोंका सुन्दर सन्निवेश किया है कि जिसके कारण भाषा में एक अनोखी सजीवता ही उत्पन्न हो गई है।

भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। वे जिस प्रकार के भाव का चित्रण जिस स्थल पर करना चाहते हैं, तदनुकूल भाषा का प्रयोग भी उन स्थानों पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। स्थान–स्थान पर शब्दों की सरलता के साथ ही साथ भावों की गम्भीरता का दर्शन होता है। उनका शब्द भंडार अगाध है। भाषा तथा शब्द–भंडार पर पूर्ण अधिकार होने के कारण उनकी भाषा में एक विचित्र सौन्दर्य तथा सुमधुर प्रवाह का दर्शन होता है।

उनके संवाद सरल, सूक्ष्म तथा रोचक और आकर्षक होते हैं। संवादों में सर्वत्र ही अनावश्यक विस्तार का उन्होंने परित्याग किया है। संवादों में भाषा इतनी सजीव और मधुर है कि वह प्रस्तुत विषय को अत्यन्त रोचक तथा आकर्षक बना देती है। इसके अतिरिक्त इनके वर्णन भी अत्यन्त सजीव तथा रोचक हैं। जिस वस्तु अथवा घटना का वर्णन करते हैं, वह वस्तु अथवा घटना नेत्रों के समक्ष ही उपस्थित होती हुई सी प्रतीत होती है। इतना होने पर भी उस अस्वाभाविकता का दर्शन तो कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है। कुमारसम्भव (पंचम सर्ग) में ही विद्यमान ब्रह्मचारी–वेषधारी शिव तथा पार्वती का अत्यन्त रोचक संवाद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

शैली – महाकवि कालिदास के अत्यधिक लोकप्रिय होने का मुख्य कारण उनकी प्रसादगुण समन्वित एवं लालित्यपूर्ण तथा परिष्कृत शैली ही है। ये सभी गुण वैदर्भी रीति में विद्यमान हैं। कालिदास इस रीति के सर्वश्रेष्ठ कलाकार माने गये है–"**वैदर्भी–रीति–सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते**" जिस भाँति अग्नि सूखी लकड़ी में अतिशीघ्र ही व्याप्त होकर फैल जाती है, उसी भाँति जो गुण सहृदय व्यक्तियों के मानस–पटल को तुरन्त ही व्याप्त कर लेता है, उसी 'प्रसाद गुण' से विशिष्ट कविता सरस, सरल एवं बोधगम्य हुआ करती है। लक्षण ग्रन्थों में इस गुण के बारे में कहा गया है–

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥

इस प्रसादगुणयुक्त शैली ने ही उनको विश्व के मूर्धन्य कवियों में स्थान प्राप्त कराया है। इस गुण से युक्त वैदर्भी रीति का लक्षण आचार्यों ने निम्न प्रकार से किया है–

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यतेङ्क (साहित्यदर्पण 2–3)

मधुर शब्द, ललित पदविन्यास, समासों का पूर्णतया अभाव अथवा अल्प समासयुक्त पदों का होना ही वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषतायें हैं।

सुकुमार तथा कोमल भावों का चित्रण करने में महाकवि कालिदास अद्वितीय हैं। इसी कारण प्रसन्नराघवकार **जयदेव** ने उनको 'कविताकामिनी का विलास' कहा है। उनकी शैली की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह है कि वे किसी भाव का चित्रण करते समय उसका स्पष्ट शब्दों में विस्तृत वर्णन करने की अपेक्षा व्यञ्जनावृत्ति का आश्रय प्राप्त कर उसकी ओर सूक्ष्म संकेत कर देना मात्र ही उचित और आवश्यक समझते हैं। तात्पर्य यह है कि उनकी शैली सूक्ष्म तथा ध्वन्यात्मक ही है। इसी कारण उनकी रचनाओं में संकेतात्मकता अथवा ध्वन्यात्मकता का स्थान–स्थान पर दर्शन होता है। किसी भाव का मार्मिक चित्रण जिस रूप में जितना रखना परमावश्यक है, उतना ही प्रस्तुत करना उनका कार्य है। उसकी व्यंजना को पूर्णतया समझ लेना सहृदय व्यक्ति की सहृयता पर ही आधारित है। उनकी इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुये **डॉ० ए० बी० कीथ** ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत ड्रामा' में लिखा है 'कि (कालिदासाज) लैंग्वेज हैज आलसो दी मैरिट ऑफ सजेस्टिवनैस ....। ही इज कन्टेन्ट टू इन्डिकेट बाई ए टच।' (अर्थात् कालिदास की भाषा में व्यंजना गुण भी विद्यमान है। वह केवल स्पर्शमात्र से निर्देश करके ही संतुष्ट हो जाता है। श्री के० एस० रामास्वामी ने अपनी पुस्तक 'कालिदास' के द्वितीय भाग में लिखा है 'कालिदास वाज फैसटीडिअलसी इकोनोसिफल इन दि यूज ऑफ वर्ड्स' (शब्दों के प्रयोग में कालिदास अत्यन्त सजगता से मितव्ययी थे।)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसके सांस्कृतिक सन्देश को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

''कुमार सम्भव में कवि ने अपने जीवन दर्शन बहुत बड़ी पट पर भूमिका पर रखकर व्यक्त करने का प्रयास किया है? त्याग और भोग के सामंजस्य से ही जीवन चरितार्थ होता है। भोग और वैराग्य के यथोचित सामञ्जस्य में ही जीवन की चरितार्थता है जो प्रेम केवल शारीरिक आकर्षण पर निर्भर करता हैं वह क्षणस्थायी होता है। जब तक वह तपस्या की अग्नि में तपकर नहीं निकलता तब तक वह वन्धय है, निष्फल है। पार्वती का जीवन तपस्या और प्रेम का सामञ्जस्य हैं व शिव का भोग एवं वैराग्य का।

यहाँ कुमारसम्भव पञ्चम सर्ग के दो एक उद्धरण देकर उपर्युक्त विशेषता का विश्ल ेषण कर देना अधिक समीचीन होगा। ब्रह्मचारी वेषधारी शिव जब पार्वती के शिव के प्रति अनन्य प्रेम की परीक्षा लेने जाते हैं तो वहाँ कहते हैं कि यदि तुम योग्य पति पाने के लिये यह तपस्या कर रही हो, तब इसके लिये कठोर व्रत को लेने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि –

''न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्''

अर्थात् रत्न अपने ग्राहक को स्वयं नहीं खोजा करता है, अपितु ग्राहक ही रत्न को खोजा करता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रत्न ग्राहक को नहीं खोजा करता है, ठीक उसी प्रकार पार्वती को भी अपना पति खोजने की आवश्यकता नहीं है। वह तो साक्षात् रत्न के सदृश है अर्थात् इतनी अधिक सुन्दरी है कि उसके सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उसके योग्य पति उसे स्वयं ही खोज लेगा। अतः इस साधारण से उद्देश्य को लेकर उसे कठोर तप करने की कोई आवश्यकता नहीं है।' इस विशद भाव को महाकवि ने कितने सूक्ष्म शब्दों में अभिव्यक्त कर दिया है, दर्शनीय है।

जब पार्वती ने अपने अभीष्ट प्रियतम (शिव) की निन्दा सुनने रूपी पाप से बचने के लिये उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाने का निश्चय किया और उठकर जैसे ही उन्होंने एक पग आगे रखा कि वैसे ही शिव ने अपने वास्तविक स्वरूप को उनके समक्ष प्रकट कर उनको पकड़ लिया। उस समय लज्जित पार्वती की मानसिक दशा का

वर्णन महाकवि ने कितने सूक्ष्म शब्दों में प्रकट किया है? देखिये–

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः।
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौङ्क

अर्थात् बहती हुई नदी के मार्ग में अकस्मात् पर्वत के आ जाने से जो उसकी दशा होती है, वही दशा पार्वती की हुई और वह न तो आगे ही कदम बढ़ा सकी और न ठहर सकी। तात्पर्य यह है कि जैसे धारा के मध्य में पर्वत के आ जाने से नदी न तो आगे बढ़ सकती है और न धारा के वेग के कारण पीछे की ही ओर मुड़ सकती है, उसी प्रकार लज्जा के कारण पार्वती न तो वहाँ ठहरने में ही अपने को समर्थ पाती थी और न अपने प्रियतम को जी भरकर देख लेने की प्रबल उत्कण्ठा ही उनके पैर को आगे बढ़ने देती थी। पार्वती के हृदय की विह्वलता तथा विमूढता के इस मार्मिक चित्र को महाकवि ने कितने सूक्ष्म शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

1.3 काव्य-सौन्दर्य

कालिदास समस्त विश्व के एक महान् कवि हैं। वे जितने भावपक्ष के चित्रण में प्रवीण हैं, उतने ही कलापक्ष के चित्रण में भी। उनकी प्रतिभा अपूर्व है। मानवीय हृद्गत भावनाओं अथवा अन्तर्जगत् का जितना सुन्दर चित्र उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है, उतना ही सुन्दर चित्रण उन्होंने बाह्य जगत् का भी किया है। उनकी कला रसवादी है। वे शृंगार रस के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनकी अधिकांश रचनायें शृंगार रस से ओत-प्रोत हैं। शृङ्गार के दोनों पक्षों का सुन्दर विश्लेषण इनकी कृतियों में हुआ है। कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में शंकर पार्वती के संयोग शृङ्गार का अनुपम वर्णन उपलब्ध होता है। वस्तुतः वे कोमल रसों के सफल चित्रकार हैं। गम्भीर रसों के प्रति उनकी रुचि स्वल्पमात्रा में ही दृष्टिगोचर होती है। कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग में रति विलाप के वर्णन में करुण रस के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं। कामदेव के भस्म हो जाने के पश्चात् रति की दशा का वर्णन देखिये–

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मामविसह्यव्यसनेन धमिताम्ङ्क 4/30ङ्क

हे वसन्त! पवन के झोंके से बुझाये गये दीपक के सदृश तुम्हारा मित्र कामदेव चला गया। अब वह लौटकर आता नहीं है और मैं उस बुझे हुये दीपक की धुंध आती हुई बत्ती के समान असह्य दुःख एवं वेदना से अत्यन्त व्याकुल हूँ।

रति के विलाप की तीव्रता से आकृष्ट होकर कामदेव का अभिन्न मित्र वसन्त उसके समक्ष प्रकट होता है। वसन्त को देखते ही रति का दुःख और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाता है और वह –

तमवेक्ष्य रुरोव सा भृशं स्तनसम्बाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायतेङ्क कु०स० 4/26ङ्क

अर्थात् वसन्त को देखकर वह (रति) और भी फूट-फूटकर तथा छाती पीट-पीटकर रोने लगी; क्योंकि दुःख में अपने स्वजनों को देखते ही दुःख उसी प्रकार बढ़ जाता है, जैसे रुकी हुई वस्तु को बाहर निकालने के लिये बड़ा भारी द्वार प्राप्त हो जाये।

इनका हास्य भी गम्भीर ही होता है। इनके हास्य-चित्रण में केवल मुस्कराना ही आता है, अट्टहास नहीं। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में पार्वती के तपःस्थल पर आये हुये ब्रह्मचारी द्वारा शिवजी की निन्दा सम्बन्धी पद्य ही इसके उदाहरण हैं।

कालिदास ने अलङ्कारों का भी प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ किया है। इनकी रचनाओं में शब्दालङ्कारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों का प्रयोग अधिक हुआ है। इनका सर्वाधिक प्रिय अलङ्कार उपमा है। वे अपनी उपमाओं के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कहा भी गया है –

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयोगुणाःङ्क

उपमाओं के प्रयोग में वे निस्संदेह सर्वश्रेष्ठ तथा अग्रगण्य हैं। कुमारसंभव पंचम सर्ग के श्लोक स० 52 तथा 62 और 85 इसके उत्तम उदाहरण हैं। इनकी उपमा स्पष्ट, पूर्ण तथा मनोहर होती है। इसीलिये उपमालङ्कार का तो इन्हें आचार्य ही स्वीकार किया गया है।

इनकी उत्प्रेक्षायें तथा अर्थान्तरन्यास भी बड़े सुन्दर हैं। इनकी कल्पना की उड़ान अत्यन्त मधुर और ऊँची होती है। उन्होंने यमक, दृष्टान्त आदि अनेक अलङ्कारों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। श्लेष अलङ्कार का प्रयोग इनकी कविता में बहुत स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होता है।

कुमार सम्भव में सात्विक भावों से युक्त पार्वती का चित्रण भाषा एवं भावाभिव्यञ्जना का अद्भुत दृष्टान्त है –

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय परमुद्धतमुद्वहन्ती।
मार्गाचल व्यतिकराकुलितेव सिन्धुरु शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।। कुमा. सं 5/85

कालिदास नितान्त रससिद्ध कवि हैं। कालिदास ने अपनी रसवादी कला द्वारा काव्यसौन्दर्य में जिस चारुता का आधान किया उससे विस्मित आलोचकों ने उन्हें रसेश्वर, रससिद्ध, रसवादी कहा। कालिदास के महाकाव्यों में मानवीय जीवन के सभी भावों का चित्रण हुआ है अतः शृंङ्गार, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक आदि सभी रसों का यथास्थान परिपाक हुआ है। किन्तु शृङ्गार और वीर रस के प्रति कालिदास की अभिरूचि अधिक दिखाई देती है। शृङ्गार के विविध पक्षों का कोमलता एवं सरसता से चित्रण किया है। संयोग श्रृङ्गार के प्रति कालिदास के मोह ने उन्हें कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में आलोचनों का पात्र बना दिया। शृङ्गारिकवी चेष्टाओं का प्रकृति में आरोप करके कालिदास ने शृङ्गार के उद्दीपन पक्ष को अत्यन्त सबल बना दिया।

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में शिवसमाधि भङ्ग करने के लिये तत्पर कामदेव के स्वागत में वसन्त की शोभा वर्णन में संयोग शृङ्गार के आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों ही पक्ष सुन्दर रूप से चित्रित हुए हैं–

तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां रतेरपि हि पदमादधानाम्।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचापः स्वकार्यासिद्धिं पुनराशशंसे।। कुमारसम. 3/57

यहाँ पार्वती का वर्णन है – वासन्ती पुष्पों को धारण करके शिव के समीप आती हुई मानो पुष्पगुच्छ के भार से किञ्चित् नमित नवीन पल्लवों वाली लता के सदृश पार्वती का आलम्बन रूप में चित्रण है। जिनको देखकर कामदेव के मन में शिव–विजय सिद्ध होने की आशा फिर बलवती हो गई।

इनकी दृष्टि अत्यन्त ही सूक्ष्म है। उन्होंने मानव प्रकृति तथा बाह्यप्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण अपने ग्रन्थों में किया है। प्रकृति से उनका अटूट अनुराग है। वे अपने प्रकृति प्रेम के लिये प्रसिद्ध हैं। वे प्रकृति के कोमल स्वरूप के उपासक हैं। उन्होंने प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन दोनों ही रूपों का चित्रण किया है। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग तथा रघुवंश के द्वितीय सर्ग का हिमालय वर्णन प्रकृति के आलम्बन रूप में अंकित है। इन वर्णनों में प्रकृति हिमालय का कैसा स्वाभाविक चित्र अंकित है-

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हःङ्क कु० सं० 1/15ङ्क

अर्थात् गङ्गाजी के झरनों की फुहारों से लदा हुआ, बार-बार देवदारु के वृक्ष को कँपाने वाला और किरातों की पेटी में बंधे हुये मोर पंखों को फर-फराने वाला यहाँ का शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन उन किरातों की थकावट को मिटाता चलता है कि जो मृगों की खोज में हिमालय पर इधर-उधर घूमते रहते हैं।

कालिदास ने उद्दीपनरूप में प्रकृति का वर्णन करते हुये उसे अधिक संवेदनशील बना दिया है। ऐसे स्थानों पर उन्होंने

उत्प्रेक्षा अथवा समासोक्ति द्वारा जड़ पदार्थों में मानवीय भावनाओं तथा कार्यों का आरोपण किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा समासोक्ति अलङ्कार प्रकृति के मनोहर रूपों को अधिक संवेदनापूर्ण बना दिया करते हैं। एक उदाहरण देखिये–

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तंडिन्मयैर्महातप: साक्ष्य इव स्थिता: क्षपाःङ्क कु० स० 5/25ङ्क

वर्षाकालीन रात्रि का समय है, वर्षा निरन्तर हो रही है, वायु के झोंके तीव्रगति से चल रहे हैं, विद्युत् चमक रही है, चारों तरफ से खुले एक शिलाखण्ड पर बैठी हुई पार्वती समाधिमग्र है। ऐसे समय पर जबकि वहाँ पार्वती की तपस्या को देखने वाला कोई भी नहीं है, कवि कल्पना करते हैं कि ऐसे समय पर रात्रि ही अपने विद्युत् रूपी चक्षुओं से साक्षी की भाँती पार्वती को देख रही थी।

इस स्थल पर कालिदास द्वारा की गयी जड़ प्रकृति में चेतना की सौन्दर्यमयी प्राणप्रतिष्ठा का स्पष्ट दर्शन होता है।

प्रकृति की सुषमा का यथातथ्य चित्रण करते हुए भी उनमें एक अपूर्व रमणीयता का समन्वय कर देना कालिदास की कला का ही चमत्कार है। प्रकृति के भव्य, मनोरम, कोमल एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण वर्णन का कोई अवसर कालिदास ने नहीं छोड़ा। कुमार संभव के प्रथम सर्ग में हिमालय का (1/1–16) तृतीय सर्ग में वसन्त ऋतु का (3/24–33) रघुवंश के प्रथम सर्ग में सामान्य प्रकृति का (1/38–43), द्वितीय सर्ग में पर्वतीय वन सुषमा, त्रयोदश सर्ग में आश्रमों, वनों, नदियों एवं पर्वत के सौन्दर्य का कालिदास ने अत्यन्त सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। कालिदास ने प्रकृति को अत्यन्त संवेदनशील एवं मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण समझा। प्रकृति भी मनुष्य के सदृश ही सुख व दुःख का अनुभव करती है।

कालिदास प्रकृति पक्ष के साथ–साथ स्त्री सौन्दर्य के भी कुशल चितेरे हैं। शिव–पार्वती के लिए समाधि में लीन पार्वती की वर्षाकालीन तपस्या का वर्णन करते हुए कवि ने अनायास ही स्त्री सौन्दर्य को अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रित किया है–

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः
वक्षीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोद्‌बिन्दवः।। कुमा. 5/24

कालिदास ने प्रस्फुटित होते यौवन की शोभा से सम्पन्न पार्वती का अत्यन्त मर्यादित किन्तु अनुपम वर्णन किया है। जिसमें भाव एवं कला का अपूर्ण माणिकाञ्चन संयोग हो रहा है–

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सुर्यांशुभिर्भिन्नमिवार विन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन।। कुमा. 1/32

अर्थात् पार्वती का सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर नवयौवन के द्वारा उसी प्रकार स्पष्टतया विभक्तावयव हो गया जैसे तूलिका के द्वारा चित्र उन्मीलित होता है अथवा सूर्य की किरणों द्वारा कमल विकसित होता है।

1.4 (ब्रह्मचारी वेषधारी) शिव और पार्वती संवाद

काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत संवादात्मकता का होना आवश्यक है। अपने व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति की वार्तालाप करने की अपनी एक प्रणाली हुआ करती है, वही उसके चरित्र का मानदण्ड बन जाया करती है। इसी प्रकार काव्य के पात्रों में हुआ पारस्परिक कथोपकथन भी उनके चरित्र और उनके क्रिया–कलापों को जानने में सहायक हुआ करता है। मनुष्य की मानसिक विचारधाराओं और भावों का ज्ञान उसकी बात–चीत से ही हुआ करता है। उसकी सब प्राकर की वृत्तियों तथा भावनाओं का विकास कथोपकथन अथवा सम्वाद द्वारा ही होता है। महाकवि कालिदास के महाकाव्यों में दो सम्वाद विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। (1) रघुवंश महाकाव्य में सिंह व दिलीप संवाद तथा (2) कुमारसम्भव में शिव–पार्वती संवाद यहां कुमारसम्भव के उक्त संवाद को स्पष्ट कर देना उचित ही होगा–

शिव पार्वती के अपने प्रति स्नेह की परीक्षा लेना चाहते थे। अतएव वे ब्रह्मचारी का वेष धारण कर वहाँ पहुँचे जहाँ पार्वती तप कर रही थी। पार्वती ने आये हुये अतिथि का उचित सत्कार किया । उनके इस आतिथ्य से संतुष्ट ब्रह्मचारी पार्वती से कुशल समाचार पूछता हुआ कहता है-आपको स्नानादि क्रियाओं के निमित्त आश्रम के जलाशयों में यथेष्ट जल मिल जाता है? अग्निहोत्र के निमित्त अपेक्षित समिधा और कुश का अभाव तो नहीं है? आपके द्वारा लगाये गये तथा संवर्द्धित इन वृक्षों से पत्र, पुष्प, फल आदि तो आवश्यकतानुसार आपको प्राप्त होते रहते हैं? तपस्या से होने वाली क्षीणता का अनुभव तो आपको नहीं हो रहा है? आपने अपनी तपस्या से इस पर्वत को पवित्र कर दिया है। आपकी तपस्या अन्य तपस्वियों के लिये अनुकरणीय बन गई है। हे पार्वती! कुलीनता, असाधारण-सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य-सुख, जिनकी प्राप्ति के लिए प्राय: लोग तपश्चर्या किया करते हैं, आपको तो स्वयं सुलभ है; फिर यह तपस्या किस फल की दृष्टि से की जा रही है? प्राय: मनस्विनी स्त्रियाँ गृह में हुये अपमान के कारण भी तप करने में प्रवृत्त हो जाया करती हैं, किन्तु यह कारण भी आपकी तपस्या का ज्ञात नहीं होता है। फिर युवावस्था में धारण किये जाने योग्य आभूषणों का परित्याग कर वृद्धावस्था में धारण करने योग्य इन वल्कल वस्त्रों को आपने क्यों धारण कर रक्खा है? यदि स्वर्ग प्राप्त करना ही आपको अभीष्ट है तो उसके निमित्त की गई यह तपस्या पूर्णतया निरर्थक है, क्योंकि आपके पिता का प्रदेश तो स्वयं स्वर्ग है। यदि किसी वर की प्राप्ति के निमित्त यह तप कर रही हो, तो भी यह तपस्या व्यर्थ है, क्योंकि आप जैसी सुन्दरी को तो आपका चाहा हुआ व्यक्ति प्राप्त करने का स्वयं ही प्रयास करेगा। रत्न ग्राहक को नहीं खोजा करते हैं, ग्राहक ही रत्नों की खोज किया करते हैं - **'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्'**। यद्यपि आपकी यह विह्वलता ही इस बात को जता रही है कि आपकी तपस्या का उद्देश्य वर प्राप्ति है, किन्तु मेरे मन का सन्देह अब भी दूर नहीं हो पा रहा है। कौन ऐसा कठोर तथा निष्ठुर हृदय होगा कि जो भीषण तपस्या के कारण अत्यन्त दुर्बल चन्द्रमा की रेखा के सदृश तुम्हारी काया देखकर भी द्रवीभूत नहीं होता? हे पार्वती! तुम मुझे कोई दूसरा न समझो। अपना अभिन्न मित्र जानकर मुझे यह बताओ कि आपका अभीष्ट वर कौन है? मैं उसको जानना चाहता हूँ। यदि आवश्यकता हो तो मेरी भी तपस्या का आधा भाग लेकर तुम अपने अभीष्ट वर को प्राप्त कर लो।

ब्रह्मचारी की उपर्युक्त बातों को सुनकर पार्वती ने अपनी एक अन्तरंग सखी को उत्तर देने के लिए संकेत किया। पार्वती का संकेत पाकर सखी कहने लगी - यह हमारी सखी पार्वती इन्द्र आदि देवताओं का अनादर करके पिनाकपाणि शिव को ही पति के रूप में प्राप्त करना चाहती है। एतदर्थ ही यह कठोर तप कर रही है।

सखी के वचनों को सुनकर ब्रह्मचारी पुन: पार्वती से प्रश्न करता है- 'हे पार्वती! इनका उक्त कथन सत्य है अथवा परिहास मात्र ही है?' ब्रह्मचारी के प्रश्न को सुनकर पार्वती कहती है-आपने जैसा सुना है वह अक्षरश: सत्य है। वस्तुत: मेरी तपस्या का उद्देश्य शिव प्राप्ति ही है।

शिव का नाम सुनते ही ब्रह्मचारी उनकी निन्दा करना आरम्भ कर देता है। वह कहता है - शिव अकिंचन हैं। उनके कुल तक का पता नहीं है। वे अमाङ्गलिक पदार्थों से प्रेम करते हैं, कङ्गन के स्थान पर वे अपने हाथ में सर्प लपेटे रहते है। रक्त रंजित गजचर्म पहनते हैं। शरीर में चिता भस्म लपेटे रहते हैं। उनका वाहन बैल हैं। उनके तीन नेत्र है, इसी से उनके सौन्दर्य का अनुमान लगाया जा सकता है। योग्य वर के लिये जिन गुणों का होना परमावश्यक है, उनमें से एक भी गुण शिव में नहीं दिखलाई पड़ता है। अत: हे पार्वती ! निश्चय को छोड़ दे।

ब्रह्मचारी द्वारा की गई शंकर की निंदा को सुनकर पार्वती क्रोधित हो जाती है तथा उनका अधर कम्पन करने लगता है। वे कहती हैं- 'मूर्ख जन महापुरुषों के असाधारण चरित्र को ठीक रूप में समझने में असमर्थ रहा करते हैं। अतएव वे उनकी निन्दा किया करते हैं। वस्तुत: आप शिव को यथार्थ रूप से नहीं जानते हो, इसी कारण उनकी निन्दा करते हो, शिव को न तो अपत्तियों से ही भय है तथा न वे सांसारिक वैभव की ही इच्छा करते हैं। फिर उनको माङ्गलिक वस्तुओं से क्या प्रयोजन है? अकिंचन होने पर भी वे समस्त ऐश्वर्यों के जन्मदाता हैं, त्रैलोक्य के अधिपति होने पर भी वे श्मशानवासी हैं, भयंकर आकृति से युक्त होने पर भी वे शिव कहलाते हैं। सत्यता तो यह है कि शिव के असाधारण चरित्र को जानने वाले हैं ही नहीं, वे असाधारण शक्तिसम्पन्न हैं। चिता की भस्म भी उनके अङ्गों का स्पर्श कर पवित्र हो जाती है। देवता भी उस भस्म को अपने मस्तक पर लगाया करते हैं । विद्वज्जन तो उन्हें ब्रह्मा का भी कारण मानते हैं, फिर उनके कुल का पता लगाया जाना कैसे सम्भव है?' इस भाँति ब्रह्मचारी के तर्कों का उत्तर

देती हुई पार्वती खीझकर कहती हैं– 'हो सकता है कि तुमने जैसा सुना है शिव वैसे ही हों, किन्तु मेरा मन उनके प्रति अनन्यभाव से अनुरक्त है।' इतने में पार्वती ने देखा कि ब्रह्मचारी कुछ और कहना चाहता है। अतः उन्होंने अपनी सखी से कहा– देखो सखी! इन ब्रह्मचारी के ओष्ठ फड़क रहे हैं। ये पुनः कुछ कहना चाहते हैं। इनसे कह दो कि अब ये कुछ न बोलें, क्योंकि जो बड़ों की निन्दा करता है, वही पाप का भागी नहीं होता, अपितु जो सुनता है, उसे भी पाप लगता है। अथवा में ही यहाँ से उठकर चली जाती हूँ। यह कहकर वे चल पड़ती हैं। उन्हें पकड़ लेते हैं, उक्त सम्वाद यहीं पर समाप्त हो जाता है।

1.5 पात्र–चरित्र–चित्रण

कालिदास के चरित्र–चित्रण कला की उत्कृष्टता एवं अनुपमयेता इससे स्पष्ट हो जाती है कि कालिदास के पात्र अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को संजोए हुए सहस्रों वर्षों के पश्चात् भी चिर नूतन एवं सुन्दर हैं। कालिदास की कालजयी लेखनी का स्पर्श पाकर वे सभी पात्र जीवन्त हो उठे हैं। उन्होंने पात्रों का एकाङ्गी चित्रण न करके सर्वगत चित्रण किया है। कुमारसंभव में नायक शिव परमयोगी है एवं सदैव तपस्या में रत रहते है चारों ओर का कामोद्दीपक वातावरण भी उनकी समाधि में विघ्न उपस्थित नहीं कर सकता –

श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन् हररु प्रसंख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति।। कुमा. 3/40

पात्रों के चरित्र के भावों और आचरण का वैपरीत्य अन्यन्त सहजता एवं स्वाभाविकता से चित्रित कर देना कालिदास की महती विशेषता है। अतः परमयोगी शिव भी जब पार्वती की तपस्या से अभिभूत होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं तब प्रिया–समागम के लिए उत्काण्ठित शिव के लिए विवाह तक का समय व्यतीत करना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है –

पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्राद्गमयदद्रिसुतासमागमोत्सुकः।
कामपरमवशं न विप्रकुर्युर्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः।। (कु. 6/95)

पार्वती का चरित्र वस्तुतः एक अत्यन्त पावन चरित्र है। 'कुमारसम्भव' में पार्वती के चरित्र में महाकवि ने जिन उदात्त एवं उत्कृष्ट गुणों का चित्रण किया है, वे पार्वती को एक साधारण मानव की कोटि से उठाकर देवता की कोटि में बिठा देते हैं। भोग और त्याग, आशा और धैर्य, कठोरता और कोमलता, प्रेम और विवेक आदि परस्पर विरोधी गुणों का एकत्र दर्शन महान् व्यक्ति के असाधारण व्यक्तित्व में ही हुआ करता है। विश्वकवि कालिदास ने इन समस्त विरोधी गुणों का समन्वय पार्वती के चरित्र में बड़ी उत्तमता के साथ प्रदर्शित किया है। प्रेमी का प्रेम, ज्ञानी का विवेक, धीरों का धैर्य, वीरों का साहस, तपस्वियों की तपस्विता, सहनशीलों की सहिष्णुता आदि समस्त उत्तम गुण पार्वती के चरित्र में देखने को उपलब्ध होते हैं। पाठकगण अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनका यथेष्ठ रूप में अनुभव कर सकते हैं।

पार्वती के चरित्र का सर्वोत्कृष्ट गुण है उनकी प्रेमदृष्टि। जो अन्य सभी गुणों का केन्द्र बिन्दु है। उनके कोमल अन्तस् में जो प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही है। वह वस्तुतः गंगा की धारा के सदृश अत्यन्त पवित्र और निर्मल पार्वती के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। इसके लिए वह महान् से महान् कष्ट को भी सहन करने के लिये उद्यत है तथा प्रत्येक प्रकार का त्याग करने के लिये भी।

शिरीष कोमला जो पार्वती रात्रि में करवट बदलने पर केशों से टूटे हुए पुष्पों से भी कष्ट पाती थीं उसी पार्वती ने नियम धारण करके इतनी उत्कट तपस्या की जिससे आकृष्ट होकर श्रेष्ठ ऋषिगण भी उनका दर्शन करने तपोवन में पहुँच गए–

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासंगवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षवस्तामृयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते।। (कु. 5/16)

शिव की प्राप्ति में जब उसे अपना शारीरिक सौन्दर्य निरर्थक प्रतीत होता है **(निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।)** तब उग्र तपस्या द्वारा उन्हें प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय करती है। उनकी माँ मैना उसके अति कोमल शरीर की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए तपस्या के निश्चय को त्याग देने के लिये उससे अनुरोध करती है, (**पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः)**। किन्तु पार्वती अपने पूर्व निश्चय से विचलित न हो सकीं। वह अपने सुख दुःख की चिन्ता किये बिना ही, मार्ग में आने वाली विघ्नबाधाओं को चूर-चूर करती हुई तपस्या में संलग्न हो जाती है। शिरीष-पुष्प के सदृश उसका कोमल शरीर तपोजन्य क्लेशों को सहन करता हुआ वज्र सदृश कठोरता को प्राप्त कर लेता है। पार्वती के शरीर में एक साथ प्राप्त होने वाली कोमलता और कठोरता का चित्रण महाकवि ने इस स्वाभाविकता और सजीवता के साथ चित्रित किया है कि ये दोनों विपरीत गुण मूर्तिमान् हो उठते हैं-

ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितम्,।
मृदु प्रकृत्या च ससारमेव चङ्क

पार्वती की सहनशीलता पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। वह नग्नभूमि पर शयन करती है, उसने पत्तों का भोजन भी त्याग दिया है। स्वयमेव उपलब्ध होने वाला जल तथा चन्द्र किरणें ही उसका आहार रह गई है। ग्रीष्मकाल में वह पंचाग्नियों का सेवन करती है, शीतकाल की रात्रियों में रात-रातभर वह जल में ही खड़ी रहा करती है और वर्षा ऋतु में वह खुले आकाश में ही निवास करती है। उनकी तपस्या सम्बन्धी उक्त आचरण तपस्वियों और मुनियों के लिये भी अनुकरणीय बन गया है। ऋषि लोग भी प्रेरणा प्राप्त करने के निमित्त उसके समीप आने लगे हैं। उन्हें अवस्था का भी ध्यान नहीं है। वे भली-भाँति जानते हैं कि धार्मिक आचरणों में जो लोग श्रेष्ठ होते हैं, उनकी अवस्था देखी नहीं जाती -

''दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्,
न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यतेङ्क''

पार्वती का प्रेम वासनामय अथवा विवेकहीन नहीं है कि जो प्रिय-प्राप्ति के मार्ग में कष्टों को देखकर विचलित हो जाया करता है। वह शिव के बाह्य सौन्दर्य पर ही आकृष्ट नहीं है, उसके लिये तो उनके आन्तरिक गुण ही आकृष्ट होने के कारण हैं। वह इससे भली भाँति परिचित है। शिव मृत्युञ्जय हैं, उनमें असाधारण तेज है। कामदेव के भस्म होने रूपी कार्य को उसने अपने समक्ष देखा है। पार्वती यह जानती है कि रति और काम जिसे अपनी विभिन्न क्रीड़ाओं द्वारा तनिक भी विचलित नहीं कर सके उसे अपने शारीरिक सौन्दर्य द्वारा प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं है। उसको प्राप्त करने का एकमात्र उपाय तपस्या ही है-

अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयम्,
तथाविधं प्रेम, पतिश्च तादृशःङ्क

पार्वती के अनन्य प्रेम की परीक्षा लेने के निमित्त ब्रह्मचारी का वेष बनाकर शिव स्वयं उसके समीप जाते हैं। वे वहाँ पहुँचकर शिव की अनेक प्रकार से निन्दा करते हैं। वे कहते है- कि शिव के वंश का पता नहीं है, अतः वे अकुलीन हैं सर्प, मुण्ड तथा श्मशान आदि अमांगलिक वस्तुओं से प्रेम रखते हैं। वे अकिंचन हैं तथा बैल की सवारी करते हैं। स्वयं नंगे रहते तथा शरीर में भस्म लगाये रहते हैं इत्यादि। किन्तु पार्वती इन बातों का उत्तर देते हुये केवल यह कहती है कि- **न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।**

अर्थात् वास्तविक रूप से शिव को जानने वाले व्यक्ति नहीं हैं। जब वह देखती है कि वह ब्रह्मचारी पुनः कुछ कहना चाहता है, तब वह यह समझकर कि महापुरुषों की निन्दा करने वाला ही पापी नहीं होता है वरन् उस निन्दा को जो सुनता है, वह भी पाप का भागी होता है, वहाँ से अन्यत्र चली जाना चाहती है-

''न केवलं यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्''
अतएव- **''इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।''**

इस भांति वह अपनी प्रेम–परीक्षा में पूर्णतया सफलता प्राप्त करती है। जिस शिव की समाधि को रति और कामदेव भी भ्रष्ट नहीं कर सके थे उस शिव की समाधि को पार्वती ने अपनी कठोर तपस्या से ऐसा छिन्न–भिन्न कर दिया कि शिव को स्वयं ही उसके समीप आने के लिये विवश हो जाना पड़ा और उन्होंने अपने को पार्वती की तपस्या से खरीदे गये दास के रूप में उसके समक्ष उपस्थित कर दिया–

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः,
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौङ्क

इस भाँति पार्वती के चरित्र सम्बन्धी गुणों की समीक्षा करते हुये हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पार्वती का चरित्र वस्तुतः त्याग, संयम, प्रेम, तपस्या, करुणा, धैर्य, साहस, आशा एवं सहिष्णुता का प्रतीक है, साथ ही अनुकरणीय भी है।

1.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने कालिदास रचित कुमारसम्भव महाकाव्य के पञ्चम सर्ग के वैशिष्ट्य को विस्तार से जाना इसी सन्दर्भ में कालिदास की भाषा शैली, काव्य–सौन्दर्य एवं प्रकृति चित्रण का विस्तार से अध्ययन किया। शिव–पार्वती के संवाद से कथावस्तु के विस्तार का क्रम जाना तथा शिव एवं पार्वती की चरित्रगत विशेषताओं का अध्ययन किया।

1.7 बोध–प्रश्न

(1) कालिदास ने किस रीति (शैली) का आश्रय लिया है?

(2) वैदर्भी रीति का आचार्यों ने क्या लक्षण किया है?

(3) कालिदास का सर्वप्रिय रस तथा अलङ्कार कौनसा है?

(4) 'न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते' का अर्थ स्पष्ट करें।

(5) ब्रह्मचारीकृत शिवनिन्दा को अतिसंक्षेप में प्रस्तुत करें।

1.8 उपयोगी पुस्तकें

(1) कुमारसम्भवम् (मल्लिनाथकृत सञ्जीवनी सहित) - व्याख्याकार प्रद्युम्न पाण्डे - चौखम्बा संस्कृत संस्थान, दिल्ली

(2) कुमारसम्भवम् - श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी - चौखम्बा संस्कृत संस्थान, दिल्ली

(3) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - पाण्डेय एवं व्यास - साहित्य निकेतन, कानपुर।

(4) संस्कृत साहित्य का इतिहास (लौकिक खण्ड) – डॉ. प्रीति प्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर।

1.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

(1) वैदर्भी

(2) माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यतेङ्क

(3) रस–**शृङ्गार**, अलङ्कार–**उपमा**

(4) धार्मिक आचरणों में जो लोग श्रेष्ठ होते हैं, उनकी अवस्था (उम्र) नहीं देखी जाती अर्थात् वे अल्पवयस्क होते हुए भी पूज्य होते हैं।

(5) ब्रह्मचारी कहता है - शिव अकिञ्चन हैं, उनका कुल अज्ञात है, वे अमाङ्गलिक पदार्थों (सर्प, रक्तरञ्जित गजचर्म, चिताभस्म आदि) से प्रेम करते हैं, त्रिनेत्र होने से कुरूप हैं। वर में अपेक्षित गुणों में से एक भी गुण शिव में नहीं है।

इकाई – 2

कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग)

की श्लोक संख्या 1 से 30 तक श्लोकों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य–छन्द, अलङ्कार आदि, सूक्ति–व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निर्धारित 'पार्वतीतपःफलोदय' नामक पञ्चमसर्ग (कुमारसम्भव) के पाठ्यांश के अध्ययन से छात्र श्लोकों के अर्थ को तो जानेंगे ही, साथ ही कुमारसम्भव के काव्यवैशिष्ट्य को भी हृद्गत कर सकेंगे। पवित्र लक्ष्य की सिद्धि के लिए किये जा सकने वाले प्रयत्नों की पराकाष्ठा क्या हो सकती है, यह भी अपर्णा (पार्वती) की दुष्कर तपश्चर्या से ज्ञात हो सकेगा। यहाँ पार्वती का वर्णित चरित्र प्रेरक व युवतियों के लिए आदर्श है- यह भी जान सकेंगें।

2.1 प्रस्तावना

कामदेव का अनिन्द्य रूप भी जब शिव को आकृष्ट न कर सका तो पार्वती को अपने रूप–सौन्दर्य की व्यर्थता का भान हो गया और वे अपनी सुन्दरता की निन्दा करने लगीं – 'निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती' – क्योंकि जो सौन्दर्य प्रियतम को रिझा न सके वह किस काम का? फिर तो उन्होंने अपने सौन्दर्य को तपोव्रत से अमोघ बनाने की ठान ली – इयेष सा कर्त्तुमवन्ध्यरूपताम्' और तपश्चरण हेतु हिमालय के एक शिखर (गौरीशिखर) पर जा पहुँची। उसके पश्चात् पार्वती ने जो घोर तपस्या प्रारम्भ की, मुख्यतः उसी का सुन्दर वर्णन इस पाठ्यांश में है।

2.2 श्लोकानुवादादि

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥ 1॥

अन्वयः –पार्वती तथा समक्षं मनोभवं दहता पिनाकिना भग्नमनोरथा सती हृदयेन रूपं निनिन्द। हि चारुता प्रियेषु सौभाग्यफला भवति।

प्रसङ्ग – शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि से कामदेव के भस्मसात् हो जाने के पश्चात् अब पञ्चम सर्ग में पार्वती की तपश्चर्या के प्रकार का वर्णन प्रारम्भ किया जा रहा है –

अनुवाद – उस प्रकार अपनी आँखों के सामने कामदेव को जलाते हुए शिव के द्वारा आशा के भग्न हो जाने पर पार्वती हृदय से अपने सौन्दर्य की निन्दा करने लगी। प्रियतम को रिझाना ही सौन्दर्य का फल होता है।

भावार्थ – भगवान् शङ्कर की क्रोधाग्नि से अपने सामने ही कामदेव को जलकर भस्म होते हुए देखकर पार्वती अपने मनोरथ (पतिरूप में शिव की प्राप्ति) के भङ्ग होने से निराश–हताश हो गई और अपनी सुन्दरता की निन्दा करने

लगी। वह विचार करने लगी कि नारी अपनी सुन्दरता से यदि अपने प्रियतम को न लुभा सके तो उसकी सुन्दरता – व्यर्थ है। सौन्दर्य का वास्तविक फल तो यही है कि प्रियतम उसे देखकर प्रसन्न हो जाये।'

समासा: –मनोभवम्–मनसि भव: (स० तत्पु०) मनोभव:, तम्। भग्नमनोरथा–भग्न: मनोरथ: यस्या: (बहु०) सा। सौभाग्यफला–सौभाग्यं फलं यस्या: (बहु०) सा।

रचना–पार्वती–पर्वत+अण्+ङीप्, प्र० एक०। समक्षम्–सम्+अक्षि+टच्–(अव्ययीभाव)। दहता–दह्+शतृ, तृ० एक०। पिनाकिना–पिनाक+इनि, तृ० एक०। भग्न–भञ्ज्+क्त। निनिन्द–निन्द्+लिट्, प्र० एक०। सती–अस्+शतृ+ङीप्, प्र० एक०। चारुता–चारु+तल्+टाप्, प्र० एक०। सौभाग्य–सुभग+ष्यञ्।

टिप्पणियाँ –पार्वती – पर्वत अर्थात् हिमालय की पुत्री। **तथा**=उस प्रकार से । यह शब्द तृतीय सर्ग के 72 वें श्लोक की शिव द्वारा कामदेव को भस्म कर देने वाली घटना की ओर संकेत करता है।

अलङ्कार: – अर्थान्तरन्यास।

लक्षण –सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा॥

छन्द – इस पञ्चम सर्ग में 48 वें श्लोक तक वंशस्थ नामक वृत्त हैं। इसका लक्षण है–**जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ**।

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मन:।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृश:॥ 2॥

अन्वय: –सा समाधिम् आस्थाय तपोभि: आत्मन: अवन्ध्यरूपतां कर्तुम् इयेष। अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृश: पतिश्च द्वयं कथं वा अवाप्यते?

प्रसङ्ग – यहाँ पार्वती के तपश्चरण के सङ्कल्प का वर्णन किया जा रहा है –

अनुवाद – उसने मन को एकाग्र करके तपोव्रत से अपने सौन्दर्य को सफल बनाना चाहा। अन्यथा वैसा प्रेम और वैसा पति–ये दोनों कैसे मिल सकते हैं?

भावार्थ – बाद में पार्वती जी ने अपने सौन्दर्य को अमोघ–सफल बनाने के लिए तपस्या करने का विचार किया। क्यों कि पार्वती जी को यह निश्चय हो गया कि तपस्या के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से उस प्रकार के उत्कृष्ट पति–प्रेम एवं शिव जैसे अपूर्व पति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

समासा: –अवन्ध्यरूपताम्–न वन्ध्यम् (नञ्० तत्पु०) अवन्ध्यम्; अवन्ध्यं च तद्रूपम् (कर्म०) अवन्ध्यरूपम्, तस्य भाव: अवन्ध्यरूपता, ताम्। तथाविधम्–तथा विधा यस्य (बहु०) तत्।

रचना – आस्थाय–आ+स्था+क्त्वा (ल्यप्)। अवन्ध्य–न+बन्ध्+यत्। रूपताम्–रूप+तल्+टाप्, द्वि० एक०। कर्तुम्–कृ+तुमुन् (=तुम्)। इयेष–इष्+लिट्, प्र० एक०। द्वयम्–द्वि+अयच्, प्र० एक०। अवाप्यते–अव+आप्+(कर्मणि) लट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – समाधिम् – एकाग्रता को। **आस्थाय** = लगाकर अथवा आश्रय प्राप्त कर। **तपोभि:** = तपस्या के द्वारा। **अवन्ध्यरूपताम्** = सफल सौन्दर्य। **इयेष** = इच्छा की। **तथाविधम्** = वैसा–(यह प्रेम का विशेषण है) उस प्रकार का प्रेम जो शिव की प्राप्ति करा सके। **प्रेम=**स्नेह। यह प्रेमन् शब्द की प्रथमा विभक्ति का एकवचन का रूप है। **तादृश**:= वैसा–उसप्रकार का। **पति:** =वल्लभ:। भारतीय स्त्रियाँ अपने पति के विषय में दो ही बातों को विशेष रूप से चाहा करती हैं – (1) दृढ़ स्नेह, (2) दीर्घ जीवन। इस श्लोक में आये हुए 'तथाविधं प्रेम' तथा 'तादृश: पति:' इन दोनों सेभी उपर्युक्त अभिप्राय ही ध्वनित होता है। **द्वयम्** =ये दोनों। **अवाप्यते** = प्राप्त होता है।

अतीव दुष्कर मनोरथ की पूर्ति के निमित्त मनु ने भी अपनी स्मृति में तप नामक साधन को ही उचित ठहराया है।

यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद दुर्गं यच्च दुष्करम्।

तत् सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम्ङ्क 11/238ङ्क

अतः पार्वती द्वारा शिव–प्राप्ति रूपी दुष्कर कार्य के लिये तप का अनुष्ठान किया जाना उचित ही था ङ्क२ङ्क

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात्ङ्क 3ङ्क

अन्वयः –मेना गिरीशप्रतिसक्तमानसां तपसे कृतोद्यमां सुतां निशम्य एनां वक्षसा परिरभ्य महतः मुनिव्रतात् निवारयन्ती उवाच।

प्रसङ्ग – यहाँ माता मेना द्वारा पार्वती को तपस्या के सङ्कल्प से रोकने की चर्चा है –

अनुवाद – यह सुनकर कि पार्वती का मन शिव में आसक्त हो गया है और तपस्या करने के लिए वह दृढसंकल्प है, मेना ने उसे गले से लगाया और कठोर तपस्या से हटाती हुई बोली।

भावार्थ – जब पार्वती की माता मेनका ने पार्वती की सखियों से यह सुना कि पार्वती शिव पर मुग्ध है और शिव–प्राप्त्यर्थ तपस्या के लिए दृढ़निश्चय कर चुकी है, तब मेनका ने तपस्या के कठोर व्रत से रोकने के लिए पार्वती को गले लगाकर प्यार से समझाया।

समासाः –गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्–गिरेः ईशः (ष० तत्पु०) गिरीशः; गिरीशे प्रतिसक्तं मानसं यस्याः (बहु०) सा, ताम्। कृतोद्यमाम्–कृतः उद्यमः यया (बहु०) सा कृतोद्यमा, ताम्। मुनिव्रतात्–मुनेः व्रतम् (ष०तत्पु०) मुनिव्रतम्, तस्मात्।

रचना – प्रतिसक्त–प्रति+सञ्ज्+क्त। निशम्य–नि+शम्+क्त्वा (=ल्यप्)। परिरभ्य–परि+रभ्+क्त्वा (=ल्यप्)। निवारयन्ती–नि+वृ+णिच्+शतृ+ङीप्, प्र० एक०। उवाच–ब्रू+लिट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ–मेना=मेनका, पार्वती की माता, हिमालय की पत्नी। **गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्**=शिव के प्रति आसक्त हो गया है चित्त जिसका (पार्वती का विशेषण) ऐसी पार्वती। **सुताम्**=पुत्री को–पार्वती को। **तपसे** = तपः कर्तुम्–तप करने के निमित्त। **कृतोद्यमाम्**=किया है प्रयास जिसने । तप करने के लिये दृढ़ निश्चय रखने वाली। **निशम्य**= सुनकर। **वक्षसा** = हृदय से। **परिरभ्य** = आलिंगन करके, ह्रदय से चिपटाकर। परि उपसर्ग के साथ प्रयुक्त रभ् धातु का अर्थ आलिंगन करना होता है। **मुनिव्रतात्** = मुनियों का व्रत अर्थात् तपस्या से। **निवारयन्ती** = निवारण करती हुई, रोकती हुई। **उवाच** = बोली– इस क्रिया का कर्ता **मेना** तथा कर्म **एनां** है ङ्क 3ङ्क

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से! क्व च तावकं वपुः।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ङ्क 4ङ्क

अन्वयः – वत्से! मनीषिताः देवताः गृहेषु सन्ति। तपः क्व? तावकं वपुश्च क्व? पेलवं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य पदं सहेत, पतत्रिणः पुनः (पदं) न (सहेत)।

प्रसङ्ग – तपस्या से पार्वती को निवृत्त करने की इच्छा से मेना कहती है –

अनुवाद – पुत्रि! घर में मनचाहे देवता रहते हैं (घर में तुम उनकी पूजा कर सकती हो)। कहाँ (कठोर) तप और कहाँ तुम्हारा (कोमल) शरीर ? शिरीष का कोमल पुष्प भौंरे के चरणपात को सहन कर सकता है किन्तु पक्षी के चरणपात को सहन नहीं कर सकता।

भावार्थ – प्रिय पुत्रि पार्वती! तुम घर में रहते हुये ही इन्द्र आदि देवताओं की आराधना करो, क्योंकि तुम्हारा यह शरीर तो शिरीष के फूल के समान अत्यन्त कोमल है। अतः वह शारीरिक कष्टसाध्य मुनिजनोचित तपस्या रूप कार्य को सहन नहीं कर सकेगा। यदि पक्षी शिरीष के फूल के ऊपर बैठना चाहें तो वह उनके भार को सहन करने में नितान्त असमर्थ ही रहेगा। ऐसी स्थिति में तुम्हारे लिये तप करना उचित नहीं है, अपने इस निश्चय को बदल दो।

समासाः –मनीषिताः–मनसः ईषा (ष० तत्पु०) मनीषा, मनीषा सञ्जाता येभ्यः (बहु०) ते। शिरीषपुष्पम्–शिरीषस्य

पुष्पम् (ष० तत्पु०) शिरीषपुष्पम्।

रचना – मनीषिताः–मनस्+ईषा+मनीषा, मनीषा+इतच्, प्र० बहु०। सन्ति–अस्+लट्, प्र० बहु०। तावकम्–युष्मद्=तवक+अण्, प्र० एक०। सहेत–सह (आ०) विधिलिङ्, प्र० एक०। पतत्रिण्ः–पतत्र+इनि, ष० एक०।

टिप्पणियाँ – मनीषिताः – मन चाहे। **क्व** – कहाँ – दो वस्तुओं के साथ जब **क्व** शब्द का दो बार प्रयोग किया जाता है, तब वह अन्तर की अधिकता का द्योतक होता है– कहाँ यह और कहाँ वह? **वपुः** – शरीर। मूल शब्द है–वपुष्। इसके रूप– वपुः, वपुषी, वपूंषि इत्यादि। तपः और वपुः दोनों ही (भवति) क्रिया के कर्ता हैं– यहाँ क्रिया पद लुप्त है। इसका अर्थ = कहाँ (कठोर)तप और कहाँ तुम्हारा (कोमल) शरीर। **भाव =** तुम्हारा यह सुकोमल शरीर तपस्या के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। **शिरीषपुष्पम् =** सिरस का फूल। यह फूल कोमलता के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर यह **सहेत** क्रिया का कर्ता है। **पतत्रिणः =** पक्षी के ङ्क 4ङ्क

अलङ्कार –उक्त पद्य में दृष्टान्त अलंकार है। लक्षण– **चेद्बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः।**

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।
क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्ङ्क 5ङ्क

अन्वयः –इति अनुशासती मेना ध्रुवेच्छां सुताम् उद्यमात् नियन्तुं न शशाक। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयः च कः प्रतीपयेत्।

प्रसङ्ग – अटल इच्छा वाली पार्वती को माता मैना उसके संकल्प से डिगा न सकी, यह प्रतिपादित किया जा रहा है–

अनुवाद –इस प्रकार उपदेश देती हुई मेना स्वपुत्री पार्वती को तपस्या करने के दृढ़ संकल्प से न हटा सकी। इष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय वाले मन को एवं नीचे की ओर गतिशील जल के प्रवाह को कौन रोक सकता है?

भावार्थ – पार्वती की माता मेना ने अपनी पुत्री पार्वती को अनेक प्रकार से समझाया बुझाया, किन्तु वह पार्वती को अपने कठोर तप करने के निश्चय से तनिक भी विचलित न कर सकी। जैसे नीचे ढाल की ओर जाते हुये जल के प्रवाह को रोकना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है, वैसे ही अभीष्ट की प्राप्ति के लिये दृढ़ निश्चय वाले मन को भी उस ओर से हटाना सम्भव नहीं है। **समासाः** –ध्रुवेच्छाम्–ध्रुवा इच्छा यस्याः (बहु०) सा ध्रुवेच्छा, ताम्। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम्– ईप्सितश्चासौ अर्थः (कर्म०) ईप्सितार्थः। स्थिरः निश्चयः यस्य (बहु०) तत्। निम्नाभिमुखम्–निम्ने अभिमुखम् (स० तत्पु०) तत्।

रचना – अनुशासती–अनु+शास्+शतृ+ङीप्, प्र० एक०। नियन्तुम्–नि+यम्+तुमुन्। शशाक– शक्+लिट्, प्र० एक०। ईप्सित–आप्+सन्+क्त। प्रतीपयेत्–प्रतीप+णिच् विधिलिङ्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – इति – इस प्रकार, यह यहाँ उपर्युक्त दो पद्यों में वर्णित कथन की ओर संकेत करता है। साथ ही अनुशासती का कर्म भी है। **अनुशासती** =उपदेश देती हुई। **ध्रुवेच्छाम् =** दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण । यह सुतां का विशेषण है। **उद्यमात् =** प्रयत्न से (तपस्या करने से)। **नियन्तुम् =** रोकने के लिये । **न शशाक =** समर्थ न हो सकी। इस क्रिया का कर्ता मेना है। **ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम्** – (अपनी) अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में दृढ़ निश्चय रखने वाला– यह मन का विशेषण है। **निम्नाभिमुखम् =** नीचे (ढाल) की ओर बहता हुआ। **प्रतीपयेत् =** पलट सकता है अथवा विपरीत लौटा सकता है ङ्क 5ङ्क

अलङ्कार – उक्त पद्य में दीपक से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी।
अयाचतारण्यनिवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपःसमाधयेङ्क 6ङ्क

अन्वयः – कदाचित् मनस्विनी सा मनोरथज्ञं पितरम् आसन्नसखीमुखेन फलोदयान्ताय तपःसमाधये आत्मनः अरण्यनिवासम् अयाचत।

प्रसङ्ग– यहाँ पार्वती द्वारा अपने पिता हिमालय से तपश्चर्या हेतु वनवास की आज्ञा मांगे जाने की बात कही जा रही

है–

अनुवाद –एक बार दृढ़ निश्चय करके उस (पार्वती) ने विश्वसनीय सखी द्वारा मनोरथ को जानने वाले अपने पिता से फलप्राप्तिपर्यन्त तपस्या करने हेतु स्वयं के लिए वनवास की आज्ञा माँगी।

भावार्थ – यद्यपि पार्वती के पिता हिमवान् पार्वती की इच्छा से भली–भाँति परिचित थे; किन्तु फिर भी वह (पार्वती) उनकी बिना आज्ञा प्राप्त किये तपस्या करने के लिये वन में जाना उचित नहीं समझती थी। अत: उसने अपनी अभिन्नहृदया सखी को वन में जाकर तपस्या करने के निमित्त पिता से आज्ञा प्राप्त करने हेतु प्रेषित किया । उसने पिता से यह भी कहलवाया कि वह अपनी अभीष्ट पूर्ति–पर्यन्त ही वन में तपस्या करेगी।

समासा: –मनोरथज्ञम्–मनोरथं जानाति (उपपदतत्पु०) इति मनोरथज्ञ:, तम्। आसन्नसखीमुखेन–आसन्ना चासौ सखी (कर्म०) आसन्नसखी, आसन्नसख्या मुखम् (ष० तत्पु०) तेन। फलोदयस्य–फलस्य उदय: (ष० तत्पु०) फलोदय:, फलोदयस्य अन्त: (ष० तत्पु०) फलोदयान्त:, तस्मै। अरण्यनिवासम्–अरण्यस्य निवास: (ष० तत्पु०) अरण्यनिवास:, तम्।

रचना –मनस्विनी–मनस्+विन्+ङीप्, प्र० एक०। मनोरथज्ञम्–मनोरथ+ज्ञा+क, द्वि० एक०। अयाचत–याच्+लङ् प्र० एक०। 'याच्' द्विकर्मक है, अत: 'पितरम्' और 'अरण्यनिवासम्' दो कर्म हैं।

टिप्पणियाँ – कदाचित् = किसी समय। **मनस्विनी** = दृढ़ संकल्प वाली अथवा स्वाभिमानी । अनेक विघ्नों के उपस्थित होने पर भी जो प्रारम्भ किये गये कार्य को नहीं छोड़ा करता है वह 'मनस्वी' कहा जाता है। मनस्वी का लक्षण–

महाकार्ये कृतोद्योगो विघ्नैराहतमानस:।
प्रारब्धं न त्यजति य: स मनस्वीति कथ्यतेङ्क

पार्वती ने भी अभीष्टकाल की प्राप्ति पर्यन्त, तप करने का निश्चय किया था तथा वह उसमें आगे चलकर सफल भी हुई है, अत: उसी के लिये 'मनस्विनी' शब्द का प्रयोग किया गया है और वह उक्त अर्थ में सार्थक भी है। **मनोरथज्ञम्**= (पार्वती की) अभिलाषा को जानने वाला। **आसन्न–सखीमुखेन** = परम विश्वासपात्र अथवा अभिन्नहृदय सखी के माध्यम से। **फलोदयान्ताय** = फल प्राप्ति होने तक। यह **तप:समाधये** का विशेषण है। **तप:समाधये** = तपश्चरण अथवा नियम अथवा व्रत की सिद्धि के लिये। यहाँ पर 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' से चतुर्थी विभक्ति हुई है। **अरण्यनिवासम्** = वनवास को यह 'अयाचत' क्रिया का मुख्य कर्म है। **अयाचत** = माँगा ङ्क 6ङ्क

अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।
प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरीशिखरं शिखण्डिमतङ्क 7ङ्क

अन्वय: –अथ गौरी अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृताभ्यनुज्ञा पश्चात् प्रजासु तदाख्यया प्रथितं शिखण्डिमत् शिखरं जगाम।

प्रसङ्ग – पिता से तपस्या की अनुमति पाकर पार्वती के तपोवन–गमन का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं

अनुवाद –तब योग्य वर में आसक्त होने से प्रसन्नता को प्राप्त पूज्यतम पिता हिमालय से अनुमति को पाकर पार्वती पश्चात् लोगों में गौरी नाम से ख्यातिलब्ध शिखर को पहुँची, जहाँ सुन्दरतम मयूर रहते थे।

भावार्थ – पार्वती की सखी के द्वारा जब उनके पिता (हिमालय) को यह ज्ञात हुआ कि उनकी पुत्री की इच्छा शिव जैसे योगी पति को प्राप्त करने की है, तब उन्होंने सन्तुष्ट होकर अपनी पुत्री को उसकी इच्छानुसार तप करने की अनुमति प्रदान कर दी। वे भी आज्ञा प्राप्त कर अपनी अभिष्ट सिद्धि की पूर्ति के लिये हिमालय पर्वत के एक ऐसे शिखर पर गई कि जो बाद में उन्हीं के नाम से (गौरी शिखर नाम से) लोक में प्रसिद्ध हो गया।

समासा: –अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा–अनुरूपश्चासौ अभिनिवेश: (कर्म०) अनुरूपाभिनिवेश:, अनुरूपाभिनिवेशेन तुष्यति (उपपदतत्पु०) इति तेन। कृताभ्यनुज्ञा–कृता अभ्यनुज्ञा यस्या: (बहु०) सा। तदाख्यया–तस्या आख्या (ष०

तत्पु०) तदाख्या, तया।

रचना –तोषिणा–तुष्+णिनि, तृ० एक०। गरीयसा–गुरु+ईयसुन्, तृ० एक०। प्रथितम्–प्रथ्+क्त, द्वि० एक०। शिखण्डिमत्–शिखण्ड+इनि+मतुप्, प्र० एक०। जगाम–गम्+लिट् प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा – योग्य आग्रह से संतुष्ट हुये। यह गुरुणा का विशेषण है। शिव सदृश असाधारण पति को प्राप्त करने के लिये तपस्या करना पार्वती का आग्रह था, जो वस्तुतः उनके अनुरूप ही था। इसी कारण उसके पिता हिमालय उसके इस निश्चय से संतुष्ट भी थे। **गरीयसा–** अत्यन्त पूज्य अर्थ वाले गरीयस् शब्द के तृतीया विभक्ति के एकवचन का रूप है। **गुरुणा** = पिता से – 'गुरुगीष्पति पित्राद्यो' इत्यमरः। **कृताभ्यनुज्ञा** = दी जा चुकी थी अनुमति जिसको ऐसी (पार्वती)। **तदाख्यया** = उसी (पार्वती) के नाम से। यहाँ करण में तृतीया विभक्ति हुई है। **प्रथितम्** = प्रसिद्ध। **शिखण्डिमत्** = मयूरों अथवा तपस्वियों से युक्त। शिखण्ड शब्द के यहाँ वर्ह (चोटी) और चूड़ा ये दो अर्थ होते है– 'शिखण्डो बर्हचूडयो' मेदिनीकोष। शिखण्ड शब्द के चोटी तथा जटा ये दो अर्थ होने के कारण शिखण्डिन् शब्द के भी ये दो अर्थ होते हैं- (1) मोर (2) तपस्वी – 'शिखण्डी मुनिभेदे स्यात् मयूरेऽपि च कथ्यते'। **शिखरम्** = चोटी को। शिखण्डिमत् शिखर का विशेषण है। वह शिखर जिसे पार्वती ने अपनी तपस्या के लिये चुना था, मोरों से युक्त था, उस स्थान पर हिंसक जन्तु नहीं रहा करते थे। अतः यह स्थल तपस्या की दृष्टि से उत्तम था। अथवा वह स्थल तपस्वीजनों से युक्त था–इस कारण पार्वती उस शिखर पर गई ङ्क 7ङ्क

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्।
बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहतिङ्क 8ङ्क

अन्वयः –अहार्यनिश्चया सा विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनं हारं विमुच्य बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति वल्कलं बबन्ध।

प्रसङ्ग – यहाँ से आगे आठ पद्यों में पार्वती के तक का उपक्रम करते हुए पहले वल्कल–बन्धन का वर्णन किया जा रहा है –

अनुवाद – दृढ़ संकल्पवती पार्वती ने मुक्ताहार को, चञ्चल सूत्र के स्पर्श से जिसका चन्दन मिट गया था, त्यागकर प्रातःकालीन सूर्य के वर्ण के सदृश अरुण वर्ण की एवं स्तनों की ऊँचाई से जो छाती को नहीं छू रही थी वृक्ष की त्वचा को पहिन लिया।

भावार्थ – तप करने के निमित्त अपने निश्चय पर अटल रहने वाली उस पार्वती ने अपने शरीर को सुशोभित करने वाले हार आदि आभूषणों का त्याग कर दिया तथा तप के योग्य वल्कल वस्त्रों को धारण कर लिया।

समासाः –अहार्यनिश्चया–न हार्यः (नञ् तत्पु०) अहार्यः। अहार्यः निश्चयो यस्याः (बहु०) सा। विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्–विशेषेण लोलाः (प्रादितत्पु०) विलोलाः; विलोलाश्च ता यष्टयः (कर्म०) विलोलयष्टयः; प्रकर्षेण विलुप्तम्–प्रविलुप्तम्–(सुप्सुपासमास), प्रविलुप्तं चन्दनं येन (बहु०) सः प्रविलुप्तचन्दनः; विलोलयष्टिभि प्रविलुप्तचन्दनः (तृ० तत्पु०), तम्। बालारुणबभ्रु–बालश्चासौ अरुणः (कर्म०) बालारुणः; बालारुण इव बभ्रु (कर्म०), तत्। पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति–पयसाः धरौ पयोधरौ (ष० तत्पु०); पयोधरयोः उत्सेधः (ष० तत्पु०) पयोधरोत्सेधः, पयोधरोत्सेधेन विशीर्णा (तृ० तत्पु०) संहतिः यस्य (बहु०) तत्।

रचना – अहार्य–न+हार्य,हृ+ण्यत्। प्रविलुप्त–प्र+वि+लुप्+क्त। विमुच्य–वि+मुच्+क्त्वा (ल्यप्)। विशीर्ण–वि+शृ+क्त। संहति–सम्+हन्+क्तिन्, प्र० एक०। बबन्ध–बन्ध्+लिट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – अहार्यनिश्चया = दृढ़ निश्चय वाली। यह **सा** का विशेषण है। **विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्** – हिलती हुई लड़ियों से चन्दन को पोंछने बाले (प्रविलुप्त –पोंछने वाले) हार को । यह **हारम्** का विशेषण है। **बालारुणबभ्रु** = प्रातःकालीन सूर्य के सदृश लाल–पीला। **बालः** = नवोदित। **अरुण**=सूर्य **। बभ्रु**= पिंगल। यह वल्कलम् का विशेषण है। **पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति** = स्तनों की ऊँचाई से छिन्न अवयव वाली । **विशीर्ण** = विघटित, छिन्न–भिन्न । यह भी **वल्कलम्** का विशेषण। **बल्कलम्** = वृक्षों की छाल को। **बबन्ध**= धारण कर लिया, बाँध लिया।

इस क्रिया का कर्ता 'सा' है ॥8॥

अलङ्कार – यहाँ परिवृत्ति नामक अलङ्कार है – लक्षण– 'परिवृत्तिविनिमयो योऽर्थानां स्यात् समासमैः'। परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत्।

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते॥ 9॥

अन्वयः –तदाननं प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरम् अभूत्, जटाभिः अपि एवम् पङ्कजं षट्पदश्रेणिभिः एव न, सशैवलासङ्गम् अपि प्रकाशते।

प्रसङ्ग – तपस्या के समय जटाधारिणी होते हुए भी पार्वती कितनी सुमुखी प्रतीत हो रही थी, यह बताया जा रहा है–

अनुवाद – उसका मुख, जैसे सुसज्जित केशों से, वैसे जटाओं से भी सुन्दर प्रतीत होता था। कमलपुष्प भौंरों से ही नहीं किन्तु सिवार से युक्त होने पर भी शोभित होता है।

भावार्थ – तपस्या का आचरण करने से पूर्व पार्वती के बाल जैसे पुष्पादि अलङ्करणों से सुसज्जित होने पर मनोहर लगा करते थे–जटाओं को धारण कर लेने पर भी उनके सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आई थी क्योंकि उसका प्राकृतिक सौन्दर्य ही इतना आकर्षक और मनोहर था कि सजाने के लिए किसी बाह्य अलङ्कार के साधनों की आवश्यकता न थी। अतः पार्वती का सौन्दर्य उन जटाओं के धारण कर लेने से भी कुछ वृद्धि को ही प्राप्त हो रहा था। वस्तुतः मनोहर आकृतियों के लिये कौन–सी वस्तु अलङ्कार नहीं हुआ करती है? (इसी भावना को कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में भी प्रदर्शित किया है– 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्'।) जैसे कमल का फूल केवल भ्रमरों से ही सुशोभित नहीं हुआ करता है– अपितु सिवार से युक्त होने पर भी वह उतना ही मनोहर प्रतीत हुआ करता है।

समासाः –तदाननम्–तस्याः आननम् (ष० तत्पु०)। पङ्कजम्–पङ्के जायते (स० तत्पु०) इति तत्। षट्पदश्रेणयः, ताभिः। सशैवलासङ्गम्–शैवलानाम् आसङ्गः (ष० तत्पु०) शैवलासङ्गः, शैवलासङ्गेन सह वर्तते (बहु) इति तत्।

रचना – शिरोरुहैः–शिरस्+रुह्+क, तृ० बहु०। पङ्कजम्–पङ्क+जन्+ड, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – **तदाननम्**– उसका मुंह। **प्रसिद्धैः** – सुसज्जित, अलङ्कृत। यह शिरोरुहैः का विशेषण है। **शिरोरुहैः** –बालों से। **जटाभिः** – जटाओं से। जिन केशों को काटा छाँटा नहीं जाता तथा जो स्वाभाविक रूप से बढ़ते रहा करते हैं और जिनको पुष्पादि के द्वारा सजाया नहीं जाता उन्हीं का नाम जटा है। वस्तुतः पार्वती का स्वाभाविक सौन्दर्य जटाओं को धारण कर लेने पर भी पूर्ववत् ही बना रहा, क्योंकि मनोहर आकृतियों के लिये सभी वस्तुयें अलङ्कार बन जाया करती हैं। **षट्पदश्रेणिभिः** –भ्रमर समूह से। **प्रकाशते** – चमकता है। **सशैवलासङ्गम्** – सिवार अथवा काई के साथ भी। **आसङ्गः** – साहचर्य, साथ। **न षट्पदश्रेणिभिरेव प्रकाशते**– यह कालिदास की प्रसिद्ध सूक्ति है। इस प्रकार के भाव को प्रदर्शित करने वाली इनके कुछ अन्य ग्रन्थों में भी सूक्तियाँ मिलती है– 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्'– (अभिज्ञान० 1/20) 'अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य' (मालविकाग्निमित्र), अहो 'सर्वास्ववस्थासुरमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्' (शाकुन्तल–अङ्क–6)। अन्य कवियों की रचनाओं में भी 'न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्' (किरातार्जुनीयम् 4/21) 'रम्याणां विकृतिरपि प्रियं तनोति' (किरात० 7/5) 'सर्वशोभनीयं सुन्दरं नाम' (प्रतिमानाटक–1), 'सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्' (अविमारक 2), 'स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते (दृष्टान्तशतक – 49)(9)

अलङ्कार = इस पद्य में 'प्रतिवस्तूपमा' अलङ्कार है।

प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणां बभार याम्।
अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया सरागमस्या रसनागुणास्पदम्॥ 10॥

अन्वयः –सा प्रतिक्षणं कृतरोमविक्रियां त्रिगुणां यां मौञ्जीं व्रताय बभार तत्पूर्वनिबद्धया तया अस्याः रसनागुणास्पदं

सरागम् अकारि।

प्रसङ्ग – तपस्या के लिए अत्यावश्यक मौञ्जीबन्धन के विषय में कहा जा रहा है –

अनुवाद –पार्वती ने क्षण-क्षण में रोमाञ्च को पैदा करने वाली त्रिरावृत्त मूँज की जिस मेखला को तपोव्रत के लिए पहना, प्रथम बार बाँधी गई उस (मेखला) से उसका मेखला बांधने की स्थान (कमर) लाल हो गया।

भावार्थ – पार्वती ने जब तपस्या का व्रत आरम्भ कर दिया तो उसके लिये यह भी आवश्यक हो गया कि वह तप के योग्य सभी साधनों को अपनाये। अत: उसने करधनी के स्थान पर तीन लड़ की मूंज की बनी मेखला को कमर में पहन लिया। उसने अपने जीवन में इसको प्रथम बार धारण किया था, अत: उसकी कर्कशता के कारण उसके शरीर में रोमाञ्च भी उत्पन्न हो जाता था और परिणामस्वरूप उसकी कमर में जहाँ पर मेखला बंधी हुई थी, वह स्थान रक्त वर्ण का हो गया था।

समासा: – प्रतिक्षणम्-क्षणे क्षणे (अव्ययीभाव:)। कृतरोमविक्रियाम्-रोम्णां विक्रिया (ष० तत्पु०) रोमविक्रिया; कृता रोमविक्रिया यया (बहु०) सा, ताम्। त्रिगुणाम्-त्रयो गुणा: यस्या: (बहु०) तत् तत्पूर्वम्, तत्पूर्वनिबद्धा (तत्पु०)। तत्पूर्वनिबद्धा, तया। रसनागुणस्पदम्-रसनाया: गुण: (ष० तत्पु०) रसनागुण:; रसनागुणस्य आस्पदम् (ष० तत्पु०) रसनागुणास्पदम्। सरागम्-रागेण सहितम् (बहु०)।

रचना – मौञ्जीम्-मुञ्ज+अण्+ङीप्, द्वि० एक०। बभार-भृ+लिट्, प्र० एक०। निबद्धया-नि+बन्ध+क्त+टाप्, तृ० एक०। अकारि- कृ+(कर्मणि) लुङ्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ –**व्रताय** –तपस्या करने के निमित्त। यहाँ 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन: से चतुर्थी विभक्ति होती है। **प्रतिक्षणम्** –प्रत्येक क्षण। **कृतरोमविक्रियाम्** – रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली। यह मौञ्जी का विशेषण है। मेखला अत्यधिक कठोर होने के कारण रोमाञ्च उत्पन्न कर रही थी। **त्रिगुणाम्** – तीन लड़ की । **गुण**–रस्सी, आवृत्ति लड़। यह भी 'मौञ्जी' का विशेषण है। **मौञ्जी** –मूंज से बनी हुई। यह बभार क्रिया का कर्म है। यह मूंज की डोरी से बनी हुई तीन लड़ की करधनी के सदृश होती है-इसी का नाम मूंज की मेखला है। **बभार**– धारण किया, पहन लिया। **तत्पूर्वनिबद्धया** – जो जीवन में प्रथम बार ही बाँधी गई थी- यह 'तया' का विशेषण है, जो मेखला के लिये प्रयुक्त हुआ है। **रसनागुणास्पदम्** – मेखला (करधनी) बाँधने का स्थान अर्थात् कमर को। **रसना** – मेखला, करधनी। **गुण** – डोरी। **आस्पदम्**– स्थान। **सरागम्** – लाल, रक्तवर्ण का । **अकारि** – कर दिया ङ्क 10ङ्क

अलङ्कार –उक्त पद्य में 'परिवृत्ति' नामक अलङ्कार ध्वनित होता है।

विसृष्टरागादधरान्निवर्तित: स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।
कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलि: कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया कर:ङ्क 11ङ्क

अन्वय: –विसृष्टरागात् अधरात् (निवर्तित:)स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकाच्च निवर्तित: कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलि: कर: तया अक्षसूत्रप्रणयी कृत:।

प्रसङ्ग – यहाँ कुशग्रहण तथा अक्षमालाधारण के विषय का प्रतिपादन किया जा रहा है –

अनुवाद – उसने अपने हाथ को, जिसकी उँगलियां समूल कुशों के काटने से बिंध गई थी, अधरोष्ठों के रञ्जन कार्य से एवं स्तनों के अंगराग से अरुण हुए गेंद से हटाकर अक्षमाला के जाप में लगाया।

भावार्थ – जिन हाथों का उपयोग पार्वती पहले अपने अधरोष्ठ को रंजित करने तथा गेंद खेलने में किया करती थी, अब तपस्या का व्रत ले लेने पर उसने अपने उन्हीं हाथों का उपयोग कुशों के अग्रभागों को तोड़कर लाने तथा रुद्राक्षमाला का जप करने में, करना प्रारम्भ कर दिया।

समासा: –विसृष्टरागात् = विसृष्ट: राग: यस्मात् (बहु०) स:, तस्मात्। स्तनाङ्गरागारुणितात्-स्तनस्य अङ्गराग: (ष० तत्पु०) स्तनाङ्गराग:, स्तनाङ्गरागेण अरुणित: (तृ० तत्पु०) स्तनाङ्गरागारुणित:, तस्मात्। कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलि:- कुशानाम् अङ्कुरा: (ष० तत्पु०) कुशाङ्कुरा:, कुशाङ्कुराणाम् आदानम् (ष० तत्पु०), कुशाङ्कुरादानेन परिक्षता:

अङ्गुलयः यस्य (बहु०) सः। अक्षसूत्रप्रणयी–अक्षाणां सूत्रम् (ष० तत्पु०) अक्षसूत्रम्; अक्षसूत्रे प्रणयी (स० तत्पु०)।

रचना – विसृष्ट–वि+सृज्+क्त। अरुणितात्–अरुण+इतच्, पञ्चमी एक०। निवर्तितः–नि+वृत+क्त, प्र० एक०। आदान–आ+दा+ल्युट् (=अन)। परिक्षत–परि+क्षणु+क्त। प्रणयी–प्रणय+इनि, प्र०एक०। कृतः –कृ+क्त, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – **विसृष्टरागात्** –लाक्षारस द्वारा जिसका रंगना छोड़ दिया गया है ऐसा–यह अधरात् का विशेषण है। तपस्या का व्रत लेने के पश्चात् पार्वती ने अधरोष्ठ का रंगना छोड़ दिया था। **अधरात्** –नीचे के होठ से, यहाँ अधर शब्द का लक्षणा शक्ति द्वारा अधर रंजन अर्थ होता है। यहाँ 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानमुपसंख्यानम्' वार्तिक से अपादान में पंचमी विभक्ति हुई है। **स्तनाङ्गरागारुणितात्** – स्तनों पर लगे हुए अंगराग (उबटन)से लाल **अंगरागः विलेपनम्** शरीर में लगने वाला लेप अर्थात् उबटन। **अरुणितात्** – लाल किये हुए अथवा लालिमा से। खेलने के समय उछलती हुई गेंद पार्वती के स्तनों का स्पर्श किया करती थी, अतः स्तनों में लगे हुए अंगराग से गेंद लाल रंग की हो जाया करती थी। **कन्दुकात्** –गेंद से – अधर को रंगने के सदृश पार्वती ने गेंद खेलना त्याग दिया। **निवर्तितः**– निवृत हुआ। यह 'करः' का विशेषण है। **कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः** – कुश के ऊपरी भागों को काटने से घायल अंगुलियों वाला, यह हाथ का विशेषण है। **परिक्षत**–घायल। कुश का प्रयोग पूजन तथा यज्ञादि कार्यों में किया जाया करता है। **अक्षसूत्रप्रणयी** – रुद्राक्षों से बनी हुई माला से प्रेम करने वाला। यह भी हाथ का विशेषण है। **प्रणय** – प्रेम, **प्रणयी** – प्रेमी। **अक्षसूत्रम्** – वस्तुतः पार्वती ने अधर का रंगना तथा गेंद का खेलना, इन दो कार्यों को त्यागकर उसके स्थान पर कुशों का लाना तथा रुद्राक्ष माला का जाप करना–इन दो कार्यों को स्वीकार कर लिया था ङ्क 11ङ्क

अलङ्कार – इस पद्य में 'पर्याय' नामक अलङ्कार है।

महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते।
अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवलम् ङ्क 12ङ्क

अन्वयः –महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि या दूयते स्म, सा बाहुलतोपधायिनी केवलम् स्थण्डिल एव निषेदुषी अशेत।

प्रसङ्ग – व्रतों में आवश्यक भूमिशयन को बताया जा रहा है –

अनुवाद – बहुमूल्य शय्या पर करवट लेने से केशों से गिरे हुए पुष्पों से भी जो दुखी होती थी, वह पार्वती अपनी कोमल भुजा को तकिया बनाकर केवल भूतल में ही बैठे सो जाती थी।

भावार्थ – व्रत लेने से पूर्व पार्वती अपने पितृगृह में अत्यधिक सुकोमल बिस्तर से युक्त बहुमूल्य पलङ्ग पर शयन किया करती थी। सोने मे जब वह करवट बदला करती थी तो, उस समय उसके बालों से कुछ फूल उसकी शय्या पर गिर जाते थे–पुष्पों की भी अपेक्षा अत्यधिक कोमल शरीर वाली होने के कारण वे गिरे हुए फूल भी उसके शरीर में चुभा करते थे। ऐसी सुकोमल शरीर वाली वह पार्वती तपस्या का व्रत ले लेने के अनन्तर अब विस्तररहित नग्न भूमि पर रात्रि के समय शयन किया करती थी तथा दिन के समय बैठा करती थी। तकिये के स्थान पर उसकी दोनों भुजायें ही तकिये का काम किया करती थीं। वस्तुतः तपस्या का कार्य महान कष्टप्रद हुआ ही करता है।

समासाः –महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः–महान् अर्हः यस्याः (बहु०) सा महार्हा, महार्हा चासौ शय्या (कर्म०) महार्हशय्या, महार्हशय्यायां परिवर्तनम् (स० तत्पु०) महार्हशय्यापरिवर्तनम्, मर्हाशय्यापरिवर्तनेन च्युतानि (तृ० तत्पु०) तैः। स्वकेशपुष्पैः–स्वे च ते केशाः (कर्म०) स्वकेशाः, स्वकेशानां पुष्पाणि (ष० तत्पु०) स्वकेशपुष्पाणि, तैः। बाहुलतोपधायिनी–बाहुरेव लता (कर्म०)बाहुलता, बाहुलताम् उपधत्ते (उपपदतत्पु०) इति सा।

रचना – शय्या–शी+क्यप्+टाप्। दूयते– दू+लट्, प्र० एक०। 'स्म' के साथ धातु का वर्तमान काल (लट्) में प्रयोग भूतार्थवाची होता है। उपधायिनी–उप+धा+णिनि+ङीप्, प्र० एक०। निषेदुषी–नि+षद्+क्व सु+ङीप्, प्र० एक०। अशेत–शी+लङ्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ –**महार्हशय्या** – परिवर्तनच्युतैः अत्यधिक मूल्य वाली शय्या पर करवट बदलने से गिरे हुये । **महार्ह** –

अत्यधिक मूल्य वाली (महान् अर्हः यस्या सा)। **शय्या** – बिस्तर (शय्यते अत्र इति)। **परिवर्तन** – बदलना। **च्युतैः** – गिरे हुये। **स्वकेशपुष्पैः** – अपने बालों में लगे हुये फूलों से। **दूयतेस्म**–कष्ट प्राप्त करती थी। इसका कर्ता 'या'। **बाहुलतोपधायिनी** –लता के सदृश सुकोमल अपनी भुजाओं का तकिया लगाने वाली। **उपधान** –तकिया। **केवले**– बिछोने से रहित। **स्थण्डिले** – चबूतरा अथवा साफ की गई हुई भूमि 'स्थण्डिलं संस्कृता भूमि' (हलायुध)। **अशेत** – सोती थी या सोया करती थी। इसका कर्ता 'सा'। **निषेदुषी** – बैठती थी ङ्क 12ङ्क

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।
लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु चङ्क 13ङ्क

अन्वयः –नियमस्थया तया तन्वीषु लतासु विलासचेष्टितं हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टं च द्वये अपि द्वयं पुनः ग्रहीतुं निक्षेपः अर्पितम् इव।

प्रसङ्ग – व्रत हेतु पार्वती ने किस प्रकार अपने स्वाभाविक विलास–चेष्टा आदि को गिरवी रख दिया, यह बताया जाता है –

अनुवाद –व्रतनिष्ठ पार्वती ने कोमल लताओं के पास अपनी सविलास चेष्टाओं को और हरिणियों के पास चञ्चलदृष्टि को धरोहर के रूप में रख दिया ताकि व्रत समाप्त होने पर वह उन्हें वापस ले सके।

भावार्थ – जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने धन को किसी दूसरे के पास अमानत के रूप मे रख दिया करता है और समय पड़ने पर पुनः उसे वापिस ले लिया करता है उसी प्रकार पार्वती ने भी अपने हावभाव आदि विलासें को सुक्रोमल लताओं के समीप तथा अपनी चञ्चल दृष्टि को हरिणियों के समीप (तपस्या समाप्ति के पश्चात पुनः वापिस ले लेने के लिये) अमानत के रूप में रख दिया था।

समासाः –नियमस्थया=नियमे तिष्ठतीति (उपपदतत्पु०) नियमस्था, तया। विलासचेष्टितम्=विलास एव चेष्टितम् (मयूरव्यंसकादितत्पु०)। हरिणाङ्गनासु = हरिणानाम् अङ्गनाः (ष० तत्पु०) हरिणाङ्गनाः, तासु। विलोलदृष्टम्=विलोलं च तद् दृष्टम् (कर्म०) विलोलदृष्टम्।

रचना –नियमस्थया–नियम+स्था+क=नियमस्थ+टाप्, तृ० एक०। तन्वीषु–तनु+ङीष्, स० बहु०। दृष्टम्–दृश्+क्त, प्र० एक०। ग्रहीतुम्–ग्रह+तुमुन्। अर्पितम्–ऋ+पुक्+णिच्+क्त, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ –**नियमस्थया** – तपस्या सम्बन्धी नियमों का पालन करने वाली। यह तया का विशेषण है। **विलासचेष्टितम्** –विलास (हावभाव, नाज़–नख़रे) की चेष्टाओं को। 'यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टदर्शनादिनाङ्क साहित्यदर्पणङ्क **विलोलदृष्टिम्** – चञ्चल दृष्टि को। **द्वयम्** – दोनों। **तन्वीषु** – कृश, पतली (सुकोमल)। यह लतासु का विशेषण है। **हरिणाङ्गनासु** – हरिणियों में। **द्वये** – दो में। **ग्रहीतुम्** – ग्रहण अथवा स्वीकार करने के लिये (पुनः प्राप्त कर लेने के लिये। **निक्षेप** – धरोहर, अमानत, थाती (निक्षिप्यते असौ इति निक्षेपः)। **इव**–मानो–यह उत्प्रेक्षावाचक अव्यय है। **अर्पितम्** – रक्खा गया, (रख दिया) ङ्क13ङ्क

अलङ्कार – उक्त पद्य मे 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है। तप करते समय पार्वती का शरीर निश्चल तथा दृष्टि स्थिर थी। अतएव कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पार्वती ने अपनी विलास की चेष्टा लताओं के समीप तथा चंचल दृष्टि हरिणियों के समीप धरोहर के रूप में रख दी थीं।

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यतिङ्क 14ङ्क

अन्वयः – सा स्वयम् एव अतन्द्रिता वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत्। गुहः अपि प्रथमाप्तजन्मनां येषां पुत्रवात्सल्यं न अपाकरिष्यति।

प्रसङ्ग – पार्वती के तत्कालोचित मुनिव्यवहार के विषय में कहते हैं –

अनुवाद –आलस्य त्याग कर पार्वती ने स्वयं ही घटरूपी स्तनों से प्रसृत सलिलरूपी दूध से सींचकर पौधों को पाला–

पोसा था। पूर्वजात इन पौधों के प्रति पार्वती के पुत्रसदृश प्रेम को कार्तिकेय भी नहीं मिटा सकेंगे।

भावार्थ – पार्वती की तपश्चर्या में आलस्य तो छू तक नहीं गया था। उन्होंने जिन वृक्षों को स्वयं लगाया था, उनका सिञ्चन आदि ही नहीं पुत्रवत् स्नेह के साथ उनका संवर्द्धन (पालन–पोषण) भी नियमित रूप से वह किया करती थी। जैसे माता अपने दूध को पिलाकर अपने पुत्र का पालन–पोषण तथा संवर्द्धन किया करती है, उसी भाँति पार्वती ने उन स्वयं लगाये हुए वृक्षों का संवर्द्धन किया था। वह स्वयं घड़ों में जल ला–लाकर उनका सिञ्चन आदि किया करती थी। उसका वृक्षों के प्रति ऐसा स्वाभाविक स्नेह था कि वैसा स्नेह उसका अपने भावी पुत्र कुमार केप्रति भी न रहा होगा। तात्पर्य यह है कि उन वृक्षों के प्रति अपने स्वाभाविक प्रेम को अपने जीवन में कभी भी न भुला सकेगी। गुहः। इसके अतिरिक्त गुफा में निवास करने के कारण भी इसका नाम गुह पड़ा था–'स्कन्दत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्।' **प्रथमाप्तजन्मनाम्** – अपने से (कुमार से) पहले जन्म लेने वाले। शंकर से पार्वती का विवाह हो जाने के अनन्तर गुह की उत्पत्ति हुई थी। शिवजी को पति के रूप में प्राप्त करने हेतु पार्वती ने जो कठोर तपस्या की थी और उस तपस्या काल में उन्होंने जिन वृक्षों का आरोपण कर पुनः उनको सींच सींच कर बड़ा किया था वे उनके लिए पुत्रवत् थे। अतः गुह की उत्पत्ति से पूर्व इन पुत्रवत् संवर्द्धित वृक्षों का जन्म पहले हो चुका था। **पुत्रवात्सल्यम्**– पुत्र प्रेम को। **अपाकरिष्यति** – दूर करेगाङ्क 14ङ्क

समासाः –अतन्द्रिता–न तन्द्रिता (नञ् तत्पु०)। घटस्तनप्रस्रवणैः–घटौ एव स्तनौ (कर्म०) घटस्तनौ, घटस्तनयोः प्रस्रवणाः (ष० तत्पु०), तैः। प्रथमाप्तजन्मनाम्–प्रथमम् आप्तं (सुप्सुपा०)प्रथमाप्तम्, प्रथमाप्तं जन्म येषाम् (बहु०) ते प्रथमाप्तजन्मानः, तेषाम्। पुत्रवात्सल्यम्–पुत्रस्य वात्सल्यम् (ष० तत्पु०) तत्।

रचना – न+तन्द्रा+इतच्+टाप्, प्र० एक०। वृक्षकान्–वृक्ष+कन्, द्वि० बहु०। आप्त–आप्+क्त। वात्सल्यम्–वत्सल+ष्यञ्, द्वि० एक०। अपाकरिष्यति– अप+आङ्+कृ+लृट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ –**अतन्द्रिता** –आलस्यविहीन होकर। यह 'सा' का विशेषण है। **वृक्षकान्** – छोटे–छोटे पेड़ों को। **घटस्तनप्रस्रवणैः** – घड़े रूपी स्तनों के पानी से। **प्रस्रवण** – झरना, बहना। **स्वयमेव** – अपने आप ही, स्वयं ही। इसका सम्बन्ध **व्यवर्धयत्** क्रिया के साथ है, किन्तु टीकाकार मल्लिनाथ ने 'अतन्द्रिता' के साथ सम्बन्ध जोड़ा है। **व्यवर्धयत्** – बढ़ाया, पालन–पोषण किया । **गुहः** – कार्तिकेय । शिवजी के दो पुत्र थे। (1) गजानन (2) षडानन। षडानन के ही अन्य नाम कार्तिकेय और गुह भी हैं। देवताओं की सेना के यह सेनापति थे– गूहति देवसेना इति।

अलङ्कार – इसमे 'विरोध' नामक अलङ्कार है। कुछ विद्वानों ने इसमें 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार भी माना है।

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।
यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचनेङ्क 15ङ्क

अन्वयः –अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणाः च तस्यां तथा विशश्वसुः यथा कुतूहलात् तदीयैः नयनैः लोचने सखीनां पुरः अमिमीत।

प्रसङ्ग – वनवासिनी पार्वती किस प्रकार हरिणों की भी विश्वासपात्र बन गई थी, यह कहा जा रहा है–

अनुवाद –अंजलिपरिमित वनबीज खिलाकर परिपालित मृग उसमें इतना अधिक विश्वास करने लगे कि वह बाल्यसुलभ चपलता के कारण अपनी सखियों के सामने उनकी आँखों से अपनी आँखे परखती थी।

भावार्थ – अपने हाथों द्वारा घास, नीवार आदि के कणों को खिलाने के कारण पार्वती उन हरिणों की इतनी अधिक परिचित तथा विश्वासपात्र बन गई थी कि बालिका सुलभ चापल्य के कारण वह जब कभी अपनी सखियों के सामने हिरणी को पकड़ कर यह परखा करती थी कि उनके तथा हरिणों के नेत्रों में क्या अन्तर है? ऐसा करने पर भी वे हिरण उसके समीप से भाग नहीं जाते थे। विश्वास की चरम सीमा देखिये कि पार्वती उन हरिणों की आँखों को पकड़ती थी तब भी वे घबराते नहीं थे।

समासाः –अरण्यबीजाञ्जलिदामलालिताः–अरण्यस्य बीजानि (ष० तत्पु०) अरण्यबीजानि, अरण्यबीजानाम् अञ्जलयः (ष० तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलयः, अरण्यबीजाञ्जलीनां दानम् (ष० तत्पु)अरण्यबीजाञ्जलिदानम्;

अरण्यबीजाञ्जलिदानेन लालिता: (तृ० तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता:।

रचना –लालिता:–लाल्+क्त, प्र० बहु०। विशश्वसु:–वि+श्वस्+लिट्, प्र० बहु०। तदीयै:–तद्+छ (ईय), तृ० बहु०। अमिमीत–माङ्+लङ्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ –अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता: – जंगल में उत्पन्न नीवारादि अन्नों से भरी मुट्ठियों के देने से पालित। **अरण्यबीज**– वन में अपने आप उगने वाले नीवार आदि अन्न के दाने। **विशश्वसु:** – विश्वास करते थे। इसका कर्ता हरिणा: है। **कुतूहलात्** – उत्सुकतावश, 'रम्यावस्तु समालोके लोलता स्यात् कुतूहलम्' **तदीयै:** – उनसे (मृगों से) सम्बन्धित अथवा मृगों से। यहाँ 'सह' शब्द के योग के कारण तृतीया विभक्ति हुई है। **नयनै:** – आँखों से। **लोचने** –आँखों को। **पुर:** – सामने, समक्ष। यह अव्यय हैं तथा इसका सम्बन्ध 'अमिमीत क्रिया से है। **अमिमीत** – नापती थी ङ्क 15ङ्क

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वय: समीक्ष्यतेङ्क 16ङ्क

अन्वय: –कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीम् अधीतिनीं दिदृक्षव: ऋषय: अभ्युपागमन्। धर्मवृद्धेषु वय: न समीक्ष्यते।

प्रसङ्ग – पार्वती के तपस्यारूप अनुष्ठान के प्रभाव का अतिशय का जा रहा है –

अनुवाद –स्नान करने और अग्नि में आहुति डालने के बाद, वल्कलों का उत्तरीय पहने एवं मन्त्रघोष करती हुई पार्वती के दर्शनार्थ उत्सुक ऋषि उसके समीप आए। तपोवृद्धों में अवस्था नहीं देखी जाती। अर्थात् कम उम्र वाले भी व्यक्ति तप के कारण आदरणीय होते हैं।

भावार्थ – तपश्चरण में प्रवृत्त पार्वती प्रतिदिन नियम से तीन बार स्नान तथा अग्निहोत्र किया करती थी। वह वल्कल वस्त्र पहिनती तथा नित्य वेद पाठ किया करती थी। निरन्तर इन नियमों का पालन करते रहने के कारण वे धर्म में ही अग्रणी हो गई। परिणामस्वरूप अनेक तपस्वी मुनिजन उनके दशनार्थ आने लगे। यद्यपि पार्वती अल्पवयस्का थीं, किन्तु अनेक तपस्वी मुनिजन उनके दर्शनार्थ आने लगे। अत: महाकवि कालिदास कहते हैं कि जो व्यक्ति धर्मवृद्ध हुआ करता है, उसकी आयु की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। वृद्धत्व चार प्राकर का माना गया है– वैराग्यवृद्धत्व, ज्ञानवृद्धत्व, धर्मवृद्धत्व और वयोवृद्धत्व। इनमें प्रथम तीन प्रकार का वृद्धत्व चतुर्थ प्रकार के वृद्धत्व की अपेक्षा नहीं किया करता है, जैसा कि महाराज मनु ने कहा–

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिर:।
यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवा: स्थविरं विदु:ङ्क

समासा: –कृताभिषेकाम्–कृत: अभिषेक: यया (बहु०) सा कृताभिषेका, ताम्। हुतजातवेदसम्–हुत: जातवेदा: यया (बहु०)सा हुतजातवेदा:, ताम्। त्वगुत्तरासङ्गवतीम्–उत्तरे आसज्यते (उपपदतत्पु०) इति उत्तरासङ्ग:, सोऽस्या अस्तीति सा, त्वचा उत्तरासङ्गवती (तृ० तत्पु०) त्वगुत्तरासङ्गवती ताम्। धर्मवृद्धेषु–धर्मेण वृद्धा: (तृ० तत्पु०) धर्मवृद्धा: तेषु।

रचना –कृत–कृ+क्त। हुत–हु+क्त। आसङ्गवतीम्–आसङ्ग+मतुप्+ङीप्, द्वि० एक०। अधीतिनीम्–अधि+इ+क्त=अधीत+इनि, द्वि० एक०। दिदृक्षव:–दृश्+सन्+उ, प्र० बहु०। अभ्युपागमन्–अभि+उप+आ+गम्, प्र० बहु०। समीक्ष्यते–सम्+ईक्ष्(कर्मणि) लट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – **कृताभिषेकाम्** – कर लिया है स्नान जिसने, उसको। यहाँ स्नान से तात्पर्य त्रिकाल स्नान से है। यह प्रात: मध्याह्न और सायंकाल तीन बार किया जाता है। **हुतजातवेदसम्**– जिसने अग्नि में हवन कर लिया है। **जातवेद** – अग्नि, 'कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्' इत्यमर:। **त्वगुत्तरासङ्गवतीम्** – जिसने वल्कल (पेड़ों की छाल द्वारा निर्मित) का उत्तरीय धारण कर लिया है, उसको। **अधीतिनीम्** – वेद पाठ करने वाली। **दिदृक्षव:** – देखने के इच्छुक (अभिलाषी)। **ऋषय:** का विशेषण है। यहाँ 'न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्थतृणाम्' से षष्ठी का निषेध हो गया है। अत: यहाँ पर 'तस्या: दिदृक्षव:' न होकर 'तां दिदृक्षव:' ही हुआ है। **अभ्युपागमन्** – आये, पास आते थे।

धर्मवृद्धेषु – धर्म में श्रेष्ठ लोगों में अथवा अधिक धार्मिक व्यक्तियों के बारे में। **वयः** – अवस्था, आयु। यह 'वयस्' शब्द का रूप है। **न समीक्ष्यते** –नहीं देखी जाती है। अवस्था में कहीं अधिक ऋषि लोग अल्पवयस्का उस पार्वती के दर्शनों के निमित्त आया करते थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि पार्वती गुणों तथा धर्म की दृष्टि से उन ऋषियों की अपेक्षा कहीं अधिक आगे थी और उसका तत्कालीन चरित्र अनुकरणीय बन चुका था। जो लोग धर्म में श्रेष्ठता को प्राप्त कर लिया करते हैं,उनकी उम्र नहीं देखी जाती। महाकवि **भवभूति** द्वारा रचित उत्तररामचरित में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है:- 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः'ङ्क 16ङ्क

विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि।
नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम्ङ्क 17ङ्क

अन्वयः –विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथि नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तच्च तपोवनं पावनं बभूव।

प्रसङ्ग – पार्वती की निवासस्थली बन चुकी उस वनस्थली के प्रभाव का अतिशय बताया जा रहा है –

अनुवाद –उस तपोवन में विरोधी जन्तुओं ने अपना पूर्व वैर त्याग दिया। वृक्ष इष्टफलों से अतिथियों की सेवा करने लगे। नूतन पर्णशाला में अग्नि प्रदीप्त रहती थी। वह तपोवन लोगों के लिए पवित्र बन गया।

भावार्थ – पार्वती जिस स्थान पर तपस्या कर रही थीं, वह स्थान पार्वती के तप के प्रभाव से अत्यन्त शान्त और पवित्र तपोवन ही बन गया था। वहाँ पर रहने वाले वन्य प्राणियों ने अपने जन्मजात स्वाभाविक वैर को त्याग दिया था। उस तपोवन में स्थित वृक्षों के स्वयं गिरे हुये सुस्वाद फलों से अतिथियों का सत्कार किया जाया करता था। उस तपोवन के अन्दर विद्यमान् पत्तों से निर्मित कुटियों (पर्णशालाओं) में निरन्तर होमाग्नि प्रज्वलित रहा करती थी। पार्वती के तप के प्रभाव से प्रभावित ऐसे तपोवन में दर्शनमात्र से ही मनुष्य पवित्र हो जाता था।

समासाः –विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम्–विरोधिनश्च ते सत्वाः (कर्म०) विरोधिसत्वाः, उज्झितः पूर्वः मत्सरः यस्मिन् (बहु०) तत्। विरोधिसत्वैः उज्झितपूर्वमत्सरम् (तृ० तत्पु०)। अभीष्टप्रसवार्चितातिथि–अभीष्टश्चासौ प्रसवः (कर्म०) अभीष्टप्रसवः, अर्चितातिथि–अर्चिताः अतिथयः यस्मिन् (बहु०) तत्, अभीष्टप्रसवेन अर्चितातिथि (तृ० तत्पु०)। नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलम्–नवाश्च ते उटजाः (कर्म०) नवोटजा नवोटजानाम् अभ्यन्तराणि (ष० तत्पु०) नवोटजाभ्यन्तराणि। तेषु सम्भृतः अनलो यस्मिन् (बहु०) तत्। तपोवनम्–तपसः वनम् (ष० तत्पु०)।

रचना –विरोधी–विरोध+इनि। उज्झित–उज्झ+क्त। अभीष्ट–अभि+इष्+क्त। अर्चित–अर्च्+क्त। सम्भृत–सम्+भृ+क्त। पावनम्–पू+णि+ल्यु, प्र० एक०। बभूव–भू+लिट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – **विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम्** –विरोध–वैर, **विरोधी**– परस्पर विरोध रखने वाले, **सत्व**–प्राणी, **उज्झित**– त्याग दिया गया, **मत्सर**– शत्रुता,डाह, ईर्ष्या 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे इत्यादि' इत्यमरः पूर्व–पहले की, जन्मजात। यहाँ पर परस्पर वैर रखने वाले प्राणियों द्वारा अपनी जन्मजात (स्वाभाविक) शत्रुता का त्याग कर दिया गया है। तपोवन में ऋषियों के तपःप्रभाव से परस्पर विरोधी प्राणी अपने स्वाभाविक वैर का त्याग कर दिया करते हैं। **द्रुमैः** – वृक्षों के द्वारा। **अभीष्टप्रसवार्चितातिथि** – जिस तपोवन में अभीष्ट फलों द्वारा अतिथियों का सत्कार किया जाता है। **अभीष्ट** – अभिलषित, इच्छित। प्रसवफल–स्यादुत्पदे फले पुष्पे प्रसवो गर्भमोचने' इत्यमरः। **अर्चित**– सत्कार किये गये हुए, पूजित। **नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम्**–नव–नवीन। **उटज**–पत्तों से निर्मित कुटी, पर्णकुटी 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। **अभ्यन्तर**–अन्दर। **सम्भृत**–सञ्चित। अनल– अग्नि। उपर्युक्त तीनों शब्द 'वनम्' के विशेषण हैं। **तपोवनम्** – तपस्या करने का स्थल (वन)। **पावनम्** – पवित्र। **बभूव**– हो गया।

यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।
तदानपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमेङ्क 18ङ्क

अन्वयः –सा यदा तावता पूर्वतपःसमाधिना काङ्क्षितं फलं लभ्यं न अमंस्त तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुं प्रचक्रमे।

प्रसङ्ग – यहाँ से पार्वती की तपस्या की पराकाष्ठा का वर्णन प्रारम्भ किया जा रहा है –

अनुवाद –जब पार्वती ने तावन्मात्र पूर्वोक्त तपस्या से इष्ट फल को प्राप्य नहीं समझा, तब अपने शरीर की कोमलता की गणना न करते हुए कठोर तप करना आरम्भ किया।

समासाः –पूर्वतपःसमाधिना–तपसः समाधिः (ष० तत्पु०) तपस्समाधिः, पूर्वश्चासौ तपस्समाधिः (कर्म०) पूर्वतपःसमाधिः, तेन। स्वशरीरमार्दवम्–स्वस्य शरीरम् (ष० तत्पु०) स्वशरीरम् ,स्वशरीरस्य मार्दवम् (ष० तत्पु०)। अनपेक्ष्य–न अपेक्ष्य (नञ् तत्पु०)।

रचना –तावता–तद्+मतुप्, तृ० एक०। काङ्क्षितम्–काङ्क्ष्+क्त, द्वि० एक०। लभ्यम्–लभ्+यत्, द्वि० एक०। अमंस्त–मन्+लुङ्, प्र० एक०। मार्दवम्–मृदु+अण्, द्वि० एक०। अनपेक्ष्य–न+अप+ईक्ष्+कत्वा (=ल्यप्)। चरितुम्–चर्+तुमुन्। प्रचक्रमे–प्र+क्रम् (आ०)+लिट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – तावता–उतने से। यह पूर्वतपः समाधिना का विशेषण है। **पूर्वतपः समाधिना** – पहले की गई हुई तपस्या के द्वारा। **काङ्क्षितम्** – मन चाहा, इच्छित, अभिलषित। पार्वती का अभीष्ट था– शिव सदृश पति तथा उनका अनन्य स्नेह प्राप्त कर लेना। **लभ्यम्** – प्राप्त करने योग्य। **न अमंस्त**– नहीं समझा, नहीं माना। **तदा**– तब। **स्वशरीरमार्दवम्** – अपने शरीर की कुमारता को । **अनपेक्ष्य** – ध्यान न देकर, उपेक्षा करके। **महत्** – दुस्तर, कठिन। **चरितुम्**– करने के लिये। **प्रचक्रमे**– प्रारम्भ कर दिया। ङ्क 18ङ्क

क्लमं ययौ कन्दुकलीलयाऽपि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।
ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ङ्क 19ङ्क

अन्वयः –या कन्दुकलीलया अपि क्लमं ययौ तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत। ध्रुवम् अस्याः वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितम्, प्रकृत्या मृदु च ससारम् एव च।

प्रसङ्ग – कोमलाङ्गी पार्वती ने स्वयं को अब घोरतपःसागर में झोंक दिया। अतः उसके स्वभाव में कोमलता व कठोरतारूप दो विरोधी गुणों की स्थिति बताई जा रही है –

अनुवाद –जो पार्वती गेंद की क्रीड़ा से भी थक जाती थी उसने मुनियों जैसा कठिन तप करना आरम्भ किया। निश्चित ही इसका शरीर सुवर्णकमल से बना था। अतएव स्वभाव से कोमल और कठोर भी थी।

भावार्थ – तप प्रारम्भ करने से पूर्व पार्वती का शरीर इतना सुकुमार था कि वह साधारण गेंद खेलने मात्र से ही थकावट का अनुभव करने लगती थी अब वही पार्वती अपने उसी कोमल शरीर से मुनियों की अपेक्षा और भी अधिक कठोर तप का आचरण करने लग गई थी। अतएव ऐसा प्रतीत होता था कि मानों उस पार्वती का शरीर सोने तथा कमल दोनों से ही निर्मित हुआ हो; क्योंकि वह कमल के समान सुकोमल तथा स्वर्ण के समान कठोर भी थी।

समासाः –कन्दुकलीलया–कन्दुकस्य लीला (ष० तत्पु०) कन्दुकलीला, तया। काञ्चनपद्मनिर्मितम्–काञ्चनं च तत्पद्मं (कर्म०) काञ्चनपद्मम्, काञ्चनपद्मेन निर्मितम् (तृ० तत्पु०)। ससारम्–सारेण सह वर्तते इति (बहु०)तत्।

रचना –ययौ–या+लिट्, प्र० एक०। व्यगाह्यत–वि+गाह् (कर्मणि) लङ्, प्र० एक०। निर्मितम्–निर्+मा+क्त, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – कन्दुकलीलया –गेंद खेलने से। **कन्दुक**–गेंद; **लीला** – खेल। **क्लमम्** – थकावट को, ययौ क्रिया का यह कर्म है। तया– उस (पार्वती) के द्वारा 'व्यगाह्यत' क्रिया का अनुक्त कर्ता है। **चरितम्** – आचरण, चरित्र। यह 'व्यगाह्यत' क्रिया का उक्त कर्म है। **व्यगाह्यत** – आचरित किया गया। **ध्रुवम्** – निश्चय ही यह अव्यय है। तथा उत्प्रेक्षा को सूचित करता है। **वपुः** – (पार्वती का) शरीर। **काञ्चनपद्मनिर्मितम्** – सोने तथा कमल का बना हुआ अथवा स्वर्ण कमल का बना हुआ। यहाँ प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है तथा उसकी संगति भी इस पद्य के चतुर्थ चरण के साथ ठीक बैठती है। अर्थात् वह पार्वती प्रकृति (स्वाभाव) से कमल सदृश कोमल तथा स्वर्ण के समान कठोर भी थी। **प्रकृत्या** – प्रकृति अर्थात् स्वभाव से। **मृदु** – कोमल। **ससारम्** – कठोर कठिन।

अलङ्कार –उत्प्रेक्षा। 'ध्रुवम्' उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। पार्वती का शरीर सुवर्ण के समान कठोर और कमल के समान स्नहकोमल था। सुवर्णसदृश कठोरता से तपश्चर्या की क्षमता सम्भावित होती है।

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ‌ 20‌

अन्वयः –शुचौ शुचिस्मिता सुमध्यमा ज्वलतां चतुर्णा हविर्भुजां मध्यगता नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः सवितारम् ऐक्षत।

प्रसङ्ग – ग्रीष्मर्तु में पार्वती की तपस्या का प्रकार क्या था, यह बताते हैं –

अनुवाद –ग्रीष्मकाल में, उज्ज्वल मन्द हास से सुशोभित एवं सुन्दर मध्यभाग से युक्त उस पार्वती ने जलती हुई चार अग्नियों के बीच बैठकर, आँखों को चकाचोंध करने वाली सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करके, एकटक होकर सूर्य को देखा।

भावार्थ – कठोर तप करने के प्रारम्भ में पार्वती ने पञ्चाग्नि साधक तप को सर्वप्रथम प्रारम्भ किया। उसने अपने (1) सामने (2) पीछे (3) दाहिने (4) बांये–चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर आँखों को चकाचौंध कर देने वाली सूर्य की प्रभा पर भी विजय–प्राप्ति कर ली और तदन्तर एक टक होकर (5) सूर्य की ओर देखा करती थी। इस तप में उसकी दृष्टि किसी दूसरी ओर एक क्षण के लिए भी न जाती थी। उसके लिये सूर्य ही पंचम अग्नि था। इस भाँति वह पञ्चाग्नि साधक तप से संलग्न थी।

समासाः –शुचिस्मिता–शुचि स्मितं यस्याः (बहु०) सा। सुमध्यमा–शोभनं मध्यमं यस्याः (बहु०) सा। मध्यगता– मध्यं गता (द्वि० तत्पु०)। नेत्रप्रतिघातिनीम्–नेत्रे प्रतिहन्ति (उपपदतत्पु०) इति तच्छीला, ताम्। अनन्यटृष्टिः – अविद्यमाना अन्यत्र टृष्टिर्यस्याः (बहु०) सा।

रचना –ज्वलताम्–ज्वल+शतृ, ष० बहु०। नेत्रप्रतिघातिनीम्–नेत्रप्रतिघात+इनि+ङीप्, द्वि० एक०। विजित्य–वि+जि+क्त्वा (=ल्यप्)। ऐक्षत–ईक्ष् (आ०)+लङ्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – **शुचौ** – ग्रीष्म ऋतु में । यह शुचि शब्द के सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप है। 'शुचि ग्रीष्माग्नि श्रृगांरेष्वाषाढे शुद्धमन्त्रिणि, ज्येष्ठे च पुंसी धवले शुद्धेऽनुपहते त्रिशु' इति मेदिनी। **ज्वलताम्** – जलते हुए। यह 'हविर्भुजाम्' का विशेषण है। **चतुर्णाम्** – चारो (अग्नियों) के। **पञ्चाग्नि** – में चारों ओर आग जलाकर साधक को बीच में बैठना पड़ता है। पाँचवी अग्नि सूर्य होता है। **हविर्भुजाम्** अग्नियों के। हवन करते समय अग्नि में हविः (घृत) डाला जाया करता है, अग्नि उसे खाती है अतः अग्नि का ही नाम 'हविर्भुज्' भी अथवा हुतभुज है। **मध्यगता** – बीच में स्थित। मध्य शब्द 'हविर्भुज्' से सापेक्ष है, अतः गता के साथ इसका समास नहीं होना चाहिये था। किन्तु 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस नियम के आधार पर समास किया गया है। **मध्यगता** – मध्यगता (द्वितीया तत्पुरुष)। **शुचिस्मिता** – स्वच्छ मुस्कराहट वाली। **शुचि** – पवित्र, शुद्ध, शोभन। **स्मित** – मुस्कराहट। पार्वती को कठोर तप का कोई कष्ट नहीं था, अतएव निरन्तर प्रसन्नचित्त ही रहा करती थी। ‌ 20‌

तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।
अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः शनैः शनैःश्यामिकया कृतं पदम्‌ 21‌

अन्वयः –सवितुः गभस्तिभिः तथा अतितप्तं तदीयं मुखं कमलश्रियं दधौ, अस्य दीर्घयोः अपाङ्गयोः केवलं शनैः शनैः श्यामिकया पदं कृतम्।

प्रसङ्ग – घोर सूर्यातप में भी सन्तप्त पार्वती का मुखकमल शोभायमान ही था –

अनुवाद –सूर्य की किरणों से, पूर्वोक्त प्रकार से अर्थात् पञ्चाग्नितपस्या के समय अत्यन्त तपा हुआ उसका मुख कमल की शोभा को प्राप्त हुआ। इसकी आँखों के आयत प्रान्त भागों के चारों और ही धीरे–धीरे काला दाग पड़ गया।

भावार्थ – जिस भाँति सूर्य की किरणों के तेज से कमल विकसित होता है तथा नवीन शोभा को प्राप्त कर लिया करता

है, उसी भाँति पार्वती का मुख सूर्य की किरणों के तेज से मलिनता को प्राप्त न कर पहले की अपेक्षा और भी अधिक शोभा को ही प्राप्त हुआ। हाँ, उसके नेत्रों के प्रान्तभाग अवश्य काले हो गये किन्तु इस कालिमा से उसके सौन्दर्य में कुछ न्यूनता नहीं आई अपितु उनका सौन्दर्य कुछ बढ़ गया।

समासाः –कमलश्रियम्–कमलस्य श्रीः (ष० तत्पु०), ताम्। अतितप्तम्–अत्यन्तम् तप्तम् (सुप्सुपा०)।

रचना–अतितप्तम्–अति+तप्+क्त। तदीयम्–तद्+छ (=ईय), प्र० एक०। दधौ– धा+लिट्, प्र०एक०। कृतम्–कृ+क्त, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – **सवितुः** – सूर्य की। 'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तनः सविताः रविः' इत्यमरः। गभस्तिभिः – किरणों से। 'किरणोंस्रांमयूखांऽशुगभस्तिधृणिरश्मयः' इत्यमरः। **तथा**– उस प्रकार से। **अतितप्तम्**– अत्यन्त संतप्त। यह मुख का विशेषण है। **तदीयम्**– उसका (पार्वती का)। **कमलश्रियम्** – कमल की शोभा का। **दधौ** – धारण किया, प्राप्त किया। **श्यामिकया**– कालिमा ने। **दीर्घयोः** – लम्बे–लम्बे, बड़े बड़े। यह 'अपाङ्गयोः' का विशेषण है। **अपाङ्गयोः** – आँखों के कोनों में 'अपाङ्गो नेत्रयोरन्तौ' इत्यमरः। **शनै–शनैः** – धीरे धीरे। **पदं कृतम्** – स्थान कर लिया अथवा स्थान बना लिया ङ्क 21ङ्क

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनःङ्क 22ङ्क

अन्वयः –अयाचितोपस्थितं केवलम् अम्बु रसात्मकस्य उडुपतेः रश्मयश्च, तस्याः पारणाविधिः बभूव किल। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः न बभूव।

प्रसङ्ग – इस समय पार्वती केवल मेघजल और चन्द्रकिरणों से ही अपना जीवन–निर्वाह करते हुए वृक्षों के समान जीवन बिता रही थी –

अनुवाद –केवल अयाचित जल और अमृतमय चन्द्रमा की किरणें उसका व्रतान्त भोजन था। उसके जीवननिर्वाह का प्रकार वृक्षों की भाँति रहा, भिन्न नहीं था।

भावार्थ – ग्रीष्मकाल पर्यन्त पार्वती ने निराहार व्रत किया। गर्मी की समाप्ति पर वर्षा का जल ही उसका पानीय हुआ। दिन में कुछ न खाने पर भी रात्रि के समय चाँदनी ही उसकी खाद्य वस्तु थी। जैसे वृक्ष अपने जीवन के निर्वाहार्थ केवल वर्षा का जल और चन्द्रमा की किरणों का ही उपभोग किया करते हैं। वैसे ही वह पार्वती भी अपने प्राणों के निर्वाहार्थ वर्षा के जल और चन्द्रकिरणों का ही प्रयोग किया करती थी। इस भाँति उसका भोजन वृक्षों के भोजन से पृथक् नहीं था अर्थात् समान ही था।

समासाः –अयाचितोपस्थितम्–न याचितम् (नञ् तत्पु०) अयाचितम्, अयाचितं च तत् उपस्थितम् (कर्म०)। रसात्मकस्य=रसः आत्मा यस्य (बहु०) स रसात्मकः, तस्य। उडुपतेः–उडूनां पतिः (ष० तत्पु०) उडुपतिः, तस्य। पारणाविधिः–पारणायाः विधिः (ष० तत्पु०)। वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः–वृक्षाणां वृत्तिः (ष० तत्पु०) वृक्षवृत्तिः, विशेषेण अतिरिक्तम् (सुप्सुपा०) व्यतिरिक्तम्, वृक्षवृत्तेः व्यतिरिक्तं (प० तत्पु०) साधनं यस्य (बहु०) सः।

रचना –अयाचित–न+याच्+क्त। उपस्थितम्–उप+स्था+क्त प्र० एक०। वृत्ति–वृत्+क्तिन्। व्यतिरिक्त–वि+अति+रिच्+क्त।

टिप्पणियाँ – **अयाचितोपस्थितम्** – बिना माँगे ही प्राप्त । **अम्बु**–जल 'अम्भोर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमरः। रसात्मकस्य– जलमय, अमृतमय। रस शब्द का प्रयोग जल अथवा अमृत इन दो अर्थों में होता है। चन्द्रमा की किरणें जलमय होने के कारण शीतल हुआ करती हैं। चन्द्रमा को ही सुधाकर अथवा सुधांशु भी कहा जाता है, क्योंकि उसकी किरणें सुधा अथवा अमृतमय होती हैं। **उडुपतेः** – तारों (नक्षत्रों) का स्वामी अथवा अधिपति। 'नक्षत्रमृक्ष भतीरा तीरकाऽप्युडुवास्त्रियाम्' इत्यमरः। **रश्मयः** – किरणें । **पारणाविधिः**– उपवास के अनन्तर लिया जाने वाला भोजन अथवा आहार–'पारणा स्यात् व्रतान्तभोजनम्' इत्यमरः। यह 'बभूव' क्रिया का कर्ता है। **वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः** – जिसकी जीविका का साधन वृक्षों की जीविका के साधनों से भिन्न नहीं था। **वृत्तिः** – जीविका, **आजीवो जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तनजीवने** इत्यमरः। यह पारणाविधिः का विशेषण है। पार्वती का

भोजन वृक्षों के भोजन से भिन्न न था। जिन वस्तुओं का प्रयोग (जल तथा चन्द्र किरणों का) वृक्ष किया करते हैं, उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग अपने व्रत के समय पार्वती द्वारा भी किया जाया करता था। यहाँ तपस्या की पराकाष्ठा का स्पष्ट दर्शन होता हैङ्क 22ङ्क

निकामतप्ता विविधेन वह्निना नभश्चरेणेन्धनसम्भृतेन सा।
तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम्ङ्क 23ङ्क

अन्वयः –विविधेन नभश्चरेण इन्धनसम्भृतेन वह्निना निकामतप्ता सा तपात्यये नवैः वारिभिःउक्षिता भुवा सह ऊष्माणम् अमुञ्चत्।

प्रसङ्ग – ग्रीष्मकालिक तप के बाद वर्षा ऋतु का आरम्भ होने पर पार्वती की क्या स्थिति हुई, यह वर्णन किया जा रहा है –

अनुवाद –आकाशचारी (आदित्यरूप) एवं काष्ठ से उत्पन्न (भूवर्ती)– इस प्रकार नानाविध अग्नियों से अत्यन्त सन्तप्त होकर वह पार्वती ग्रीष्मकाल के अन्त में (वर्षा ऋतु की) अभिनव जलधाराओं से सिक्त होकर पृथ्वी के साथ–साथ ऊर्ध्वगामी बाष्प को निकालने लगी।

भावार्थ – जैसे ग्रीष्म ऋतु के अन्त में नवीन वर्षा की बूंदों के पृथिवी पर गिरने पर ग्रीष्म की राशि उठा करती है, उसी भाँति ग्रीष्म ऋतु में तप सम्बन्धी पंचाग्नियों के द्वारा अत्यधिक संतप्त हुई पार्वती के शरीर के ऊपर जब प्रथम वर्षा की जल की बूंदे गिरती थी, तो उसके शरीर से भी निरन्तर वाष्प निकला करती थी।

समासाः –विविधेन–विविधा विधा यस्य (बहु०) स विविधः तेन। नभश्चरेण–नभसः चरः (ष० तत्पु०)। नभश्चरः, तेन। इन्धनसम्भृतेन–इन्धनेन–सम्भृतः (तृ० तत्पु०), तेन। निकामतप्ता–निकामं तप्ता (सुप्सुपा०)। तपात्यये–तपसःअत्ययः (ष०तत्पु०) तपात्ययः, तस्मिन्। ऊर्ध्वगम्–ऊर्ध्व गच्छति (उपपदतत्पु०) इति ऊर्ध्वगः, तम्।

रचना –नभश्चरेण–नभस्+चर्+ट, तृ० एक०। सम्भृतेन–सम्+भृ+क्त, तृ० एक०। तप्ता–तप्+क्त+टाप्, प्र० एक०। उक्षिता–उक्ष्+क्त+टाप्, प्र० एक०। ऊर्ध्वगम्–उर्ध्व+गम्+ड, द्वि० एक०।

टिप्पणियाँ – **नभश्चरेण**–आकाश में विचरण करने वाला अर्थात् सूर्य। इन्धनसम्भृतेन– ईधन (काष्ठ) से प्रज्वलित –इस विशेषण से ईंधन से जलने वाली साधारण अग्नि से अभिप्राय है। **विविधेन** – नाना प्रकार के, पाँच प्रकार के। उपर्युक्त –तीनों शब्द **वह्निना** के विशेषण हैं। **निकामतप्ता**– ग्रीष्म ऋतु, **अत्यय** नाश। ग्रीश्म ऋतु की समाप्ति पर अर्थात् वर्षा के आरम्भ में। नवैः – नूतन, नवीन (प्रथम) अर्थात् वर्षा के प्रथम जल से। **वारिभिः** – जलों से अर्थात् जल बिन्दुओं से । यह वारि शब्द की तृतीया विभक्ति का बहुवचन का रूप है। **उक्षिता**– सींची हुई, भीगी हुई। **भुवा सह** – पृथ्वी के साथ। यह भू शब्द की तृतीया विभक्ति के एकवचन का रूप है। यहाँ **सह युक्तेऽप्रधाने** सूत्र से सह के योग में तृतीया विभक्ति हुई है। **ऊध्वर्गम्**– ऊपर की ओर जाने वाली। **ऊष्माणम्**– गर्मी को, वाष्प को। ऊष्मन् शब्द की द्वितीया विभक्ति का एकवचन का रूप है। वह **अमुञ्चत्** क्रिया का कर्म है। **अमुञ्चत्** – छोड़ने लगी। ग्रीष्म ऋतु में। संतप्त हुई पृथ्वी के ऊपर जब प्रथम वर्षा की बूँदे गिरती थी तब उसके शरीर से भी भाप निकलती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उसका शरीर इतना अधिक तप्त हो गया था कि उसकी गर्मी के कारण शरीर के ऊपर गिरा हुआ जल–वाष्प बन जाता था ङ्क 23ङ्क

अलङ्कार – उक्त पद्य में **सहोक्ति** अलङ्कार है। लक्षण 'सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासत जनरञ्जनः'

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताःप्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवःङ्क 24ङ्क

अन्वयः –प्रथमोदबिन्दवः तस्याः पक्ष्मसु क्षणं स्थिताः ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः वलीषु स्खलिताः चिरेण नाभिं प्रपेदिरे।

प्रसङ्ग – वर्षा–काल में तपस्यारत पार्वती का वर्णन किया जा रहा है –

अनुवाद –वर्षा ऋतु की पहिली बूँदे उसकी पलकों में क्षणमात्र ठहरीं, फिर वे होंठों से टकराईं, ऊँचे स्तनों पर टपकने से इधर–उधर छिटक गईं, फिर त्रिवली में गिरकर इधर–उधर घूमती हुई अन्त में नाभिप्रदेश में प्रविष्ट हुईं।

भावार्थ – पार्वती कठोर तपस्या में संलग्न होने के कारण खुली हुई भूमि पर ही वर्षा काल में भी तप किया करती थी। अत: आकाश से गिरती हुई वर्षा के जल की बूँदे पहले उसकी आँखों के पलकों के ऊपर गिरा करती थीं और वहीं पर नेत्र रोमों के घने होने के कारण कुछ काल तक रुक कर फिर निचले ओष्ठ के ऊपर गिरा करती थीं और फि र वहाँ से कठिन एवं उठे हुये उसके स्तनों के अग्रभाग से टकराकर चूर्ण–चूर्ण होकर वे बूँदे पेट की त्रिवलियों में क्रमश: फिसलती हुई, अन्त में उसकी गहरी नाभि के अन्दर प्रविष्ट हो जाती थीं।

समासा: –प्रथमोदबिन्दव:–उदकस्य बिन्दव: (ष० तत्पु०) उदबिन्दव:, प्रथमे च ते उदबिन्दव: (कर्म०) प्रथमोदबिन्दव:। ताडिताधरा: –ताडित: अधर: यै: (बहु०) ते। पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता: – पयोधरयो: उत्सेध: (ष० तत्पु०) पयोधरोत्सेध:, पयोधरोत्सेधे निपात: (स० तत्पु०), पयोधरोत्सेधनिपातेन चूर्णिता: (तृ० तत्पु०)।

रचना –स्थिता: –स्था+क्त, प्र० बहु०। ताडित–तड्+णिच्+क्त। निपात–नि+पत्+घञ्। चूर्णिता:–चूर्ण+क्त, प्र० बहु०। स्खलिता: –स्खल+क्त। प्रपेदिरे–प्र+पद्+लिट्, प्र० बहु०।

टिप्पणियाँ – प्रथमोदबिन्दव: –प्रथम जल की बूँदे – यहाँ पर प्रथम शब्द का भाव नवीन है, अर्थात् वर्षा ऋतु के आ जाने पर सर्वप्रथम हुई वर्षा की बूँदे। **क्षणम्**–क्षणभर। **तस्या:** – उसके (पार्वती के)। **पक्ष्मसु** – आँख के रोमों अथवा बरौनियों में। 'पक्ष्मन्' शब्द की सप्तमी विभक्ति के बहुवचन का रूप है। **स्थिता:** – ठहरती थीं, रुकती थीं। इस स्थल पर महाकवि ने पार्वती की बरौनियों की दो मुख्य विशेषताओं की ओर संकेत किया है (1) बरौनियों का घना होना तथा (2) चिकना होना। (1) घनी होने के कारण जल–बिन्दु उनमें आकर उलझ जाते थे। (2) चिकना होने के कारण ये बूँदे अधिक समय तक उन बरौनियों में ठहर नहीं पाती थीं। **ताडिताधरा: –** आघात (चोट) पहुँचाया है ओष्ठ में जिन्होंने, ऐसी बूँदें। इस विशेषण से पार्वती के अधरोष्ठ का कोमल होना प्रकट होता है। **पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिता:** – स्तनों के उन्नत अग्रभाग पर टकराने के कारण चूर–चूर हुये (जलबिन्दु)। इससे स्तनों के उन्नत तथा कठिन होने का भाव अभिव्यक्त होता है। **वलीषु** – पेट पर पड़ी हुई रेखाओं में। वली को त्रिवली भी कहा जाता है। पेट के सौन्दर्य वर्णन में इसका विशेष महत्त्व है। **स्खलिता: –** फिसलती हुई या गिरी हुई। **प्रपेदिरे** – प्राप्त होती थी अथवा पहुँचती थी। इस क्रिया का कर्ता 'प्रथमोदबिन्दव:' तथा कर्म 'नाभिम्' है। बरौनियों,अधर, पयोधर तथा त्रिवली आदि अनेक स्थानों पर रुकने के कारण जल की बूँदे कुछ देर में ही नाभि तक पहुँच पाती थीं ङ्क24ङ्क

अलङ्कार – इस पद्य में 'परिकर' अलङ्कार है। लक्षण–'अलङ्कार: परिकर: साभिप्राये विशेषणे'।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातप:साक्ष्य इव स्थिता: क्षपा:ङ्क 25ङ्क

अन्वय: –निरन्तरासु अन्तरवातवृष्टिषु अनिकेतवासिनीं शिलाशयां तां महातप:साक्ष्ये स्थिता: क्षपा: तडिन्मयै: उन्मिषितै: व्यलोकयन् इव।

प्रसङ्ग – पार्वती के वार्षिक (वर्षाकालिक) तप का प्रकार – वर्णन किया जा रहा है –

अनुवाद –घनघोर झंझावात में खुले मैदान में शिला पर बैठी हुई उस पार्वती को महान् तप की साक्षिणियाँ रातें बिजली की पलकों से देखती थीं।

भावार्थ – वर्षा ऋतु में जब लगातार जल बरसा करता था, वायु भी बड़ी तीव्र गति से बहा करती थी, बिजलियाँ भी चमका करती थीं, तब ऐसे भीषण समय में भी वह पार्वती खुले स्थान में पत्थर की चट्टान पर शयन किया करती थी। उस निर्जन वन में उसकी कठोर तपस्या को देखने वाला रात्रियों के अलावा अन्य कोई भी न था।

समासा: –निरन्तरासु–निर्गतम् अन्तरं याभ्य: (बहु०) ता:, तासु। अन्तरवातवृष्टिषु–अन्तरे वात: यासां (बहु०) ता: अन्तरवाता:, अन्तरवाताश्च ता वृष्टय: (कर्म०) तासु। अनिकेतवासिनीम्–निकेते वसति (उपपदतत्पु०) इति

निकेतवासिनी, न निकेतवासिनी (नञ् तत्पु०) ताम्। महातपःसाक्ष्ये–महत् च तत् तपः (कर्म०) महातपः, महातपसः साक्ष्यम् (ष० तत्पु०) महातपःसाक्ष्यम्, तस्मिन्।

रचना –अनिकेतवासिनीम्–अनिकेत+वस्+णिनि+ङीप्, द्वि० एक०। शिलाशयाम्–शिला+शी+अच्+टाप्, द्वि० एक०। साक्ष्ये– साक्ष+इनि+ष्यञ्, स० एक०। तडिन्मयैः–तडित्+मयट्, तृ० बहु०। व्यलोकयन्+वि+लोक्+लङ्, प्र० बहु०।

टिप्पणियाँ – निरन्तरासु – लगातार। यह 'वृष्टिषु' का विशेषण है। **अन्तरवातवृष्टिषु** –हवा के साथ–साथ होने वाली वर्षाओं में। **अन्तर** – मध्य। **वात** – वायु। **अनिकेतवासिनीम्** – बिना घर के रहने वाली। **निकेत** – 'वेश्मसद्मनिकेतनम्' इत्यमरः। **शिलाशयाम्** – चट्टानों पर शयन करने वाली। उपर्युक्त दोनों ही विशेषण **ताम्** के हैं। महातपः साक्ष्ये–कठोर तपस्या की साक्षी (गवाही) में । **क्षपाः** –रात्रियाँ। उस एकान्त स्थल में केवल रात्रियाँ ही पार्वती की कठोर तपस्या की साक्षी थीं । **तडिन्मयैः** बिजली रूपी । 'तडित्सौदामिनीविद्युच्चञ्चला चपला अपि' इत्यमरः। यह उन्मिषितैः का विशेषण है। **उन्मिषितैः** – अवलोकनों के द्वारा । **व्यलोकयन्** – देखती थीं। इस क्रिया का कर्ता **क्षपाः** है। **इव** – इस स्थल पर इसका प्रयोग उत्प्रेक्षा के निमित्त हुआ है; यह अव्यय है ङ्क 25ङ्क

अलङ्कार – उक्त पद्य में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावतीङ्क 26ङ्क

अन्वयः –सा अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः सहस्यरात्रीः उदवासतत्परा परस्पराक्रन्दिनि पुरः वियुक्ते चक्रवाकयोः मिथुने कृपावती निनाय।

प्रसङ्ग – हेमन्त ऋतु में पार्वती की तपस्या का जो प्रकार था, उसका वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है –

अनुवाद–पार्वती ने हिमकणों में आर्द्र पवनयुक्त पौषमास की रात्रियाँ, जल में खड़े होकर, एक दूसरे को पुकारने वाले, समक्षस्थित, वियुक्त चक्र द्वन्द्व पर कृपादृष्टि रखते हुए बिताई।

भावार्थ – पार्वती हेमन्त ऋतु की हिम सदृश शीतल वायु से युक्त रात्रियों को भी शीतल जल में खड़े होकर बिताती थी। ऐसा करने से उसका तप निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा था। तप के बढ़ने के कारण उसके हृदय में करुणा के भाव जाग्रत हो गये थे। अतएव वह जब रात्रि में परस्पर एक दूसरे से मिलने के निमित्त चिल्लाते हुये वियोगी चकवा–चकवी के जोड़े के आक्रन्दन को सुनती थी तो वह उनके प्रति अत्यधिक दया के भाव को प्रकट किया करती थी।

समासाः –अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः (सुप्सुपा) अत्यन्तहिमोत्किराः, अत्यन्तहिमोत्किरा अनिलाः यासु (बहु०) ताः। सहस्यरात्रीः–सहस्यस्य रात्रीः (ष० तत्पु०)। उदवासतत्पराः– उदके वासः उदवासः, उदवासे तत्परा (स० तत्पु०)। परस्पराक्रन्दिनि–परस्परम् आक्रन्दि (सुप्सुपा) तस्मिन्। चक्रवाकयोः–चक्रवाकी च चक्रवाकश्चेति चक्रवाकः (एकशेष०), तयोः।

रचना –उत्किर–उद्+कृ+क। सहस्य–सहस्+यत्। आक्रन्दिनि– आ+क्रन्द्+णिनि, स० एक०। वियुक्ते–वि+युज्+क्त, स० एक०। कृपावती–कृपा+मतुप्+ङीप्, प्र० एक०। निनाय–नी+लिट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ – अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः अत्यधिक बर्फ की वर्षा करने वाली वायु से युक्त अर्थात् बर्फीली हवा से युक्त। यह रात्रीः का विशेषण है। **हिम** – बर्फ, **उत्किराः** –पूस। **उदवासतत्परा** – जल में खड़ी रहने वाली । **तत्परा**– संलग्न। **परस्पराक्रन्दिनी** –एक दूसरे से मिलने के लिये रोते (चिल्लाते हुये)। **पुरः** – समक्ष, सामने । यह अव्यय है। **वियुक्ते**– एक दूसरे से पृथक् । यह 'मिथुने' का विशेषण है। **चक्रवाकयोः** –चकवा और चकवी के। इस पक्षी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसका जोड़ा सम्पूर्ण दिन साथ–साथ रहता है तथा रात्रि में दोनों (चकवा–चकवी) एक दूसरे से मजबूरन पृथक् रहा करते हैं। **मिथुने** –जोड़े में अथवा जोड़े के प्रति **कृपावती** –दया का भाव रखने वाली। **निनाय**–व्यतीत करती थीं। भाव यह है कि रात्रि के समय चकवा चकवी के जोड़े की वियोगावस्था तथा परस्पर एक दूसरे से मिलन की इच्छा के कारण चिल्लाते हुये उन्हें देखकर उसका (पार्वती का) हृदय दया से आर्द्र हो जाता था और उसकी पूर्ण सहानुभूति उस जोड़े के प्रति थी ङ्क 26ङ्क

मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्ङ्क 27ङ्क

अन्वयः –सा निशि पद्मसुगन्धिना प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना मुखेन तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदाम् अपां सरोजसन्धानम् अकरोत् इव।

प्रसङ्ग – उग्र तपस्या में रत होने पर भी पार्वती के मुखकमल की प्रसन्नता का सुन्दर चित्रण यहाँ प्रस्तुत है –

अनुवाद–उसने रात्रि में कमलों के से गन्ध से सुगन्धित एवं काँपते हुए ओष्ठदल से सुशोभित मुख से, सरोवर को, जिनकी कमलसम्पत्ति हिमवर्षा से नष्ट हो गई थी, मानो कमलयुक्त बना दिया।

भावार्थ –जाड़े की रात्रि में जल में रहते समय पार्वती का केवल मुख ही दिखलाई पड़ता था। शीत के कारणउसका ओष्ठ रूपी दल कम्पन करता था तथा कमल के सदृश सुगन्धित निश्वासवायु से वह दिशाओं को सुगन्धित करती थी। ऐसा ज्ञात होता था कि मानो हेमन्त ऋतु में कमलों के नष्ट हो जाने पर पार्वती के मुख रूपी कमल से ही उस सरोवर की कमल सम्पति अटूट रह गई हो।

समासाः –पद्मसुगन्धिना–शोभनः गन्धः यस्य (बहु०) सः सुगन्धिः। पद्मम् इव सुगन्धिः (कर्म०), तेन। प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना–प्रवेपमानश्चासौ अधरः (कर्म०) प्रवेपमानाधरः, प्रवेपमानाधर एव पत्रम् (कर्म०) प्रवेपमानाधरपत्रम्, तेन शोभते (उपपदतत्पु०) इति, तेन। तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदाम्–तुषाराणां वृष्टिः (ष० तत्पु०) तुषारवृष्टिः, तुषारवृष्ट्या क्षताः (तृ० तत्पु० तुषारवृष्टिक्षताः, पद्मानां सम्पदः (ष० तत्पु०) पद्मसम्पदः, तुषारवृष्टिक्षताः पद्मसम्पदः यासाम् (बहु०) ताः, तासाम्। सरोजसन्धानम्–सरसि जायते (उपपदतत्पु०) इति सरोजम्, सरोजानां सन्धानम् (ष० तत्पु०) सरोजसन्धानम्।

रचना –पद्मसुगन्धिना–पद्म+सुगन्धि, तृ० एक०। शोभिना–शुभ्+णिनि, तृ० एक०। क्षत–क्षण+क्त। सन्धानम्–सम्+धा+ल्यु (=अन), द्वि० एक०।

टिप्पणियाँ –पद्मसुगन्धिना –कमल के सदृश सुगन्धित। यह 'मुखेन' का विशेषण है। **प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना–** कम्पन करते हुए पत्ते रूपी नीचे के ओष्ठ से सुशोभित। **अधर** – नीचे का ओष्ठ। यहाँ पर पत्र शब्द कमल की पँखुड़ी का वाचक है। कमल के पत्ते (पँखुड़ी) के सदृश पार्वती का नीचे का ओष्ठ शीत की अधिकता के कारण कम्पन कर रहा था। **तुषारवृष्टिक्षतपद्मसंपदाम्–** पाले के गिरने के कारण नष्ट हुये कमल रूपी सम्पत्ति वाले, यह विशेषण अपाम् का है। पाले के गिरने से कमल नष्ट हो जाया करते हैं। जिस जलाशय में खड़े होकर पार्वती तप कर रही थी। उस जलाशय में विद्यमान कमल हिम की वर्षा के कारण नष्ट हो गये थे। जलाश की शोभा कमलों से ही होती है। अतएव कमल सरोवर की सम्पत्ति कहे जाते हैं। **अपाम्**–जल की । **सरोजसन्धानम्** – कमलों की परम्परा अथवा कमलों की पंक्ति (श्रेणी) अथवा कमलों का संघठन । यह अकरोत् क्रिया का कर्म है।

अलङ्कार – उक्त पद्य में उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलङ्कार है।

स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तित्ता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदःङ्क 28ङ्क

अन्वयः – स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तित्ता तपसः परा काष्ठा हि। तया पुनः तत् अपि अपाकीर्णम्, अतः प्रियंवदां तां पुराविदः अपर्णा इति च वदन्ति।

प्रसङ्ग – दुश्चर तपस्या के कारण कैसे पार्वती का 'अपर्णा' – यह नामकरण हो गया, यह कहा जा रहा है –

अनुवाद –स्वयं गिरे हुए वृक्षों के पत्तों पर निर्वाह करना तपस्या की पराकाष्ठा होती है,किन्तु उसने वह भी छोड़ दिया। इसलिए प्रियभाषिणी पार्वती को पुराण–इतिहास के कोविद 'अपर्णा' नाम से पुकारते हैं।

भावार्थ – वृक्षों से स्वयं गिरे हुए पत्तों को खाकर अपने शरीर का पोषण करना सर्वोत्कृष्ट तप कहा जाता है। किन्तु पार्वती ने उन पत्तों का खाना भी छोड़ दिया था। (इस भाँति उसके तप की यह महती पराकाष्ठा थी।)

समासाः –स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता–स्वयं विशीर्णानि (सुप्सुपा) स्वयंविशीर्णानि, द्रुमस्य पर्णानि (ष० तत्पु०) द्रुमपर्णानि, स्वयंविशीर्णानि द्रुमपर्णानि एव वृत्तिर्यस्य (बहु०) सः, तस्य भावः। प्रियंवदाम्–प्रियं वदति (उपपदतत्पु०) इति प्रियंवदा, ताम्। पुराविदः–पुरा विदन्ति (उपपदतत्पु०) इति ते। अपर्णा–अविद्यमानं पर्णं यस्याः (बहु०) सा।

रचना –विशीर्ण–वि०+शृ+क्त ! वृत्तिता–वृत्+क्तिन्+तल्+टाप्, प्र० एक०। अपाकीर्णम्–अप+आ+कृ+क्त, प्र० एक०। प्रियंवदाम्–प्रिय+वद्+खच्+टाप्, द्वि० एक०। पुराविदः –पुराविद्, प्र० बहु०।

इसी कारण विद्वानों द्वारा उसे अपर्णा नाम से भी पुकारा गया अथवा कहा गया।

टिप्पणियाँ – स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता –अपने आप गिरे हुये वृक्षों के पत्तों द्वारा जीवन निर्वाह करना। **विशीर्ण** – गिरे हुये, टूटे हुये। पत्तों को तोड़ने से वृक्षों को कष्ट होगा, इस भय से पार्वती वृक्षों के पत्तों को तोड़ा नहीं करती थी। इसी कारण वह स्वयं गिरे हुये पत्तों को खाकर अपना उदर पोषण किया करती थी। **वृत्तिता**– जीविका का साधन। **पराकाष्ठा**–चरम सीमा– अन्तिम स्थिति। **परा**– अन्तिम चरमा। **काष्ठा**–सीमा–'काष्ठा उत्कर्षे स्थिती दिशि' इत्यमरः। व्रत अथवा तप की अन्तिम स्थिति अथवा सीमा जिससे कठोर तप और होना सम्भव नहीं है। **अपाकीर्णम्** –छोड़ दिया, त्याग दिया। **अतः** –इसी कारण, इसीलिये। पुराविदः – पुरानी बातों के ज्ञाता, पुरातत्त्ववेत्ता। **प्रियंवदाम्**– प्रिय बचनों को बोलने वाली। इस कठोर तपस्या में वर्तमान होने पर भी पार्वती सदैव प्रिय वचनों का ही व्यवहार करती रही। **अपर्णा**–पत्तों का खाना भी छोड़ देने वाली। यहाँ यह पार्वती के अनेक नामों में से एक है 'अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानि चण्डिकाम्बिका' इत्यमरः। शिवपुराण में भी– चतुर्थे त्यक्तपर्णा च अपर्णाख्यामवाप सा' ॥ 28॥

मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा ॥ 29॥

अन्वयः –मृणालिकापेलवं स्वम् अङ्गम् एवमादिभिः व्रतैः अहर्निशं ग्लपयन्ती सा कठिनैः शरीरैः उपार्जितं तपस्विनां तपः दूरम् अधश्चकार।

प्रसङ्ग – पार्वती के कठोर तप के आगे महर्षियों का तप भी फीका पड़ गया, यह प्रतिपादित किया जा रहा है।

अनुवाद –कमल के समान कोमल अपने अङ्ग को उक्त प्रकार के व्रतों से रातदिन शोषित करती हुई पार्वती ने तपस्वियों के दृढ़ शरीर से सञ्चित तप को भी अतिक्रान्त कर दिया।

भावार्थ – पार्वती ने अपने कमल सदृश कोमल शरीर को जलवास, अग्निवास, उपवास आदि व्रत के कठोर तप से तपाया,अतः ऋषि मुनियों और तपस्वियों का कठोर तप भी उसके तप के आगे तुच्छ हो गया था। तात्पर्य यह है कि पार्वती का तप तपस्वियों आदि के तप की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ तथा उत्तम था।

समासाः –मृणालिकापेलवम्–मृणालिका इव पेलवम् (कर्म०)। एवमादिभिः–एवम् आदिर्येषाम् (बहु०) ते एवमादयः, तैः। अहर्निशम्–अहश्च निशा च (द्वन्द्व) तत्।

रचना –ग्लपयन्ती–ग्लप्+णिच्+शतृ+ङीप्, प्र० एक०। उपार्जितम्–उप+अर्ज्+क्त, द्वि० एक०। तपस्विनाम्–तपस्+विनि, ष० बहु०।

टिप्पणियाँ – मृणालिकापेलवम्– कमलिनी के सदृश कोमल। यह 'अङ्गम्' (शरीर) का विशेषण है। अथवा कमलकन्द के समान कोमल– मृणाल कमलकन्द। **पेलव** – कोमल। **स्वम्** – अपने। आत्मा आत्मीय ज्ञाति धनवाची स्वशब्द 'स्व ज्ञातो आत्मनि स्व त्रिषु आत्मीये स्वोऽस्त्रियां धने' इत्यमरः। 'स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्' इस सूत्र से ज्ञाति और धन अर्थ से अतिरिक्त अर्थात् आत्मा तथा आत्मीय अर्थ में 'स्व' शब्द की सर्वनाम संज्ञा बहुवचन में विकल्प करके हुआ करती है। एवमादिभिः – ऊपर कहे गये अग्नि जल के बीच में वास इत्यादि प्रकारों के द्वारा। **अहर्निशम्**– रात दिन। **ग्लपयन्ती।** थकाती हुई। यह 'सा' का विशेषण है। **उपार्जितम्**– पैदा किये हुये,अर्जित। यह तपः का विशेषण है। तपस्विनाम्– तपस्वियों अथवा मुनियों के अधश्चकार तुच्छ कर दिया, नीचा कर दिया, मात कर दिया। **अधः**– नीचे **चकार**– कर दिया। इस क्रिया का कर्ता **सा** है। तात्पर्य यह है कि पार्वती ने कोमल शरीर की कोई चिन्ता नहीं की इसके विपरीत उन्होंने ऐसी कठोर तपस्या की कि वैसी तपस्या का तपस्वियों के द्वारा भी किया जाना

सम्भव प्रतीत नहीं होता है ‌‌ 29‌‌

अथाजिनासाढधरः प्रगल्भवाग् ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा‌‌ 30‌‌

अन्वयः –अथ अजिनाषाढधरः प्रगल्भवाक् ब्रह्ममयेन तेजसा ज्वलन् इव कश्चित् जटिलः शरीरबद्धः प्रथमाश्रमः यथा तपोवनं विवेश।

प्रसङ्ग – इस प्रकार के दुश्चर तपश्चरण से द्रवीभूत हृदय वाले शिव उस तपोवन में किसी ब्रह्मचारी के वेश में पार्वती के पास पहुँचे। वह ब्रह्मचारी किस प्रकार का था, यही प्रस्तुत श्लोक में कहा जा रहा है –

अनुवाद –तब कृष्णमृगचर्मधारी और पलाशदण्डधारी, गम्भीरध्वनियुक्त एवं ब्रह्मतेज से देदीप्यमान एक जटायुक्त तापस तपोवन में प्रविष्ट हुआ। प्रतीत होता था कि ब्रह्मचर्याश्रम ही साकार होकर प्रकट हुआ हो।

भावार्थ – जब पार्वती अपने दुष्कर तप में संलग्न थी तो, उस समय एक अज्ञात जटाधारी पुरुष उसके आश्रम में आया। यह ब्रह्मचारी काले हरिण के चमड़े को पहने हुये था तथा हाथ में पलाशदण्ड को लिये था। उसकी आवाज में गम्भीरता थी तथा वह ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हो रहा था। ऐसा मालूम होता था कि मानो ब्रह्मचर्य आश्रम ही शरीर धारण करके उस तपोवन में प्रविष्ट हुआ हो।

समासाः –अजिनाषाढधरः–अजिनं च आषाढश्चेति (द्वन्द्व) अजिनाषाढौ, अजिनाषाढयोः धरः (ष० तत्पु०)। प्रगल्भवाक्–प्रगल्भा वाक् यस्य (बहु०) सः। शरीरबद्धः–शरीरं बद्धं यस्य (बहु०) सः। प्रथमाश्रमः–प्रथमश्चासौ आश्रमः (कर्म०)। तपोवनम्–तपसः वनम् (ष० तत्पु०)।

रचना –धरः–धृ+अच्, प्र० एक०। ब्रह्ममयेन–ब्रह्म+मयट्, तृ० एक०। ज्वलन्–ज्वल्+शतृ, प्र० एक०। विवेश–विश्+लिट्, प्र० एक०।

टिप्पणियाँ–अथ– इसके पश्चात्, अनन्तर । पार्वती द्वारा की गई तपस्वियों की भी अपेक्षा और अधिक कठोर तपस्या के अनन्तर। इस स्थल पर 'अथ' का प्रयोग नवीन प्रसंग के आरम्भ का द्योतक है। 'मङ्गलानन्तरारम्भ प्रश्नकात्स्र्न्येष्वथो अथ' इत्यमरः। **अजिनाषाढधरः**– कृष्ण मृग के चर्म की तथा पलाश (ढाक) के दण्ड को धारण किये हुये। **अजिन**– काले हरिण का चमड़ा। **आषाढ** – पलाश के दण्ड। तपस्वीजनों द्वारा धार्मिक कार्यों के निष्पन्न करने हेतु आषाढ के महीने में पलाश के दण्ड को धारण किया जाया करता है। अतः इस पलाशदण्ड का ही नाम आषाढ़ पड़ गया। ब्राह्मण ब्रह्मचारी वेषधारी शिवजी पलाश दण्ड को धारण किये हुये थे। उन्होंने इस कारण ब्रह्मचारी के वेष को धारण किया था कि जिससे उनको कोई पहचान न सके। **प्रगल्भवाक्**– बोलने में प्रवीण, चतुर, वाक्पटु 'प्रगल्भः प्रतिभान्विते' इत्यमरः। **ब्रह्ममयेन** – ब्रह्म से प्राप्त (आये हुये) यहाँ ब्रह्म शब्द वेद के अर्थ में प्रयुक्त है। यह तेजसा का विशेषण है। इव का प्रयोग यहाँ अवधारणार्थ हुआ है। **जटिलः** – जटाधारी। जटाओं को धारण करना भी ब्रह्मचारी का एक लक्षण अथवा चिह्न है। 'मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाधरः' मनुस्मृति। **शरीरबद्धः**– शरीर धारण किये हुये, शरीरी, मूर्तिमान्। **प्रथमाश्रमः** – पहला आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम। आश्रम चार माने गये हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। तपोवनम् – तपोवन में। विवेश– प्रविष्ट हुआ‌‌ 30‌‌

अलङ्कार – इस पद्य में 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।

2.3 बोधप्रश्न

(1) 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' इस सूक्ति का भाव स्पष्ट करें।

(2) श्लोक संख्या १४ की सप्रसङ्ग व्याख्या कीजिए तथा व्याकरणत्मक टिप्पणी दीजिए।

(3) 'न धर्मवृद्धेषुवयः समीक्ष्यते' इस सूक्ति का भावार्थ लिखें।

(4) पार्वती को 'अपर्णा' क्यों कहा गया है?

(5) स्थिताः – क्षणं पक्ष्मसु ताडितधराः – श्लोक संख्या 24 की सप्रसङ्ग व्याख्या कीजिए तथा व्याकरणत्मक टिप्पणी लिखिए ।

(6) पार्वती से मिलने तपोवन में प्रविष्ट हुए ब्रह्मचारी का संक्षिप्त वर्णन करें।

2.4 उपयोगी पुस्तकें

(1) कुमारसमभवम् (मल्लिनाथकृत सञ्जीवनी सहित) – व्याख्याकार प्रद्युम्न पाण्डे – चौखम्बा, दिल्ली।

(2) कुमारसम्भवम् – श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी – चौखम्बा, दिल्ली।

2.5 बोध–प्रश्नों के उत्तर

(1) द्रष्टव्य श्लोक क्र. 1

(2) द्रष्टव्य श्लोक क्र. 14

(3) द्रष्टव्य श्लोक क्र. 16

(4) द्रष्टव्य श्लोक क्र. 28

(5) द्रष्टव्य श्लोक क्र. 24

(6) द्रष्टव्य श्लोक क्र. 30

इकाई – 3

कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग)

की श्लोक संख्या 31 से 60 तक श्लोकों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य–छन्द, अलङ्कार आदि, सूक्ति–व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

- आप महाकवि कालिदास के महाकाव्य कुमारसंभवम् के पंचम सर्ग के श्लोक संख्या 31 से 60 तक का अध्ययन करने जा रहे हैं।
- आप जानेंगे कि किस प्रकार शिवजी ने ब्रहाचारी का वेश धारण कर गौरीशिखर पर पार्वती के आश्रम में प्रवेश कर अपने वाक्चातुर्य से उसके हृदय की बात जान ली।
- आप जानेगें कि किस प्रकार पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी रूपधारी शिव को उसके मनोरथ अर्थात् त्रैलोक्य के स्वामी महादेव को पति रूप में प्राप्त करने के विषय में बताया।

3.1 प्रस्तावना

पंचम सर्ग संवादों की दृष्टि से एवं भारतीय संस्कृति के दिग्दर्शन से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कामदेव को अपने आंखों के सामने ही भस्म होते देख पार्वती ने जान लिया कि शिव को बाह्य सौन्दर्य की चकाचौंध से नहीं रिझाया जा सकता और जो सौन्दर्य प्रिय को न रिझा सके वह किस काम का–प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता। तब वह पिता की आज्ञा लेकर वन में चली जाती है और ऐसा कठोर तप करती है कि स्वयं उच्चकोटि के योगी भी उसके दर्शनार्थ आश्रम में आते हैं। वह अपनी एकनिष्ठा और लगन से सिद्ध करती है कि सौन्दर्य पापकर्म हेतु प्रवृत्त नहीं होता– **यदुच्यते पार्वति। पाववृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद् वचः।**

3.2 कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) श्लोक 31 से 60 तक श्लोकों की व्याख्या

तमातिथेयी बहुमानपूर्वया, सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः।।31।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक कुमारसंभवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग से है। जब पार्वती की तपस्या पराकाष्ठा पर पहुंच गई, उसने वृक्षों, के सूखे पत्ते तक खाना छोड़ दिया था, तब ब्रह्मचारी के वेश में एक जटाधारी अतिथि ने आश्रम में प्रवेश किया।

अनुवाद – अतिथिसत्कार करने में अत्यन्त कुशल पार्वती ने पूजा सामग्री लेकर अत्यन्त सम्मानपूर्वक उस अतिथि की पूजा की। समान भाव से सबको देखने पर भी विशिष्ट लोगों के प्रति अत्यन्त गौरव का भाव रखने वाली क्रियाएं हो ही जाती है।।31।।

भावार्थ – अतिथि सत्कार में कुशल पार्वती ने उस तेजस्वी तपस्वी का बडे आदर भाव से पूजा सत्कार किया। यद्यपि स्थिरचित्त हो जाने से उसमें समत्व का भाव आ गया था, किन्तु ऐसे विशिष्ट अतिथि के प्रति विशेष सम्मान के भाव जागृत हो ही जाते हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियां – अतिथि + ढञ् + डीप् – अतिथेयी। बहुःमानः पूर्वः यस्याः सा, तया बहुमानपूर्वया – बहुब्रीहि समास। सपर्यया में हेतौ तृतीया से तृतीया विभक्ति। प्रत्युदियाय– प्रति + उद् + इण् धातु लिट् लकार।

काव्यगत वैशिष्ट्य – 'पार्वती ने उसका सत्कार किया' इस विशेष का समर्थन उत्तरार्ध के सामान्य कथन से किया गया है अतः इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

जिसका लक्षण है –

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

सूक्ति–व्याख्या – साम्येऽपि निविष्टचेतसाम् वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः – जिन्होंने तपश्चर्या से अपने चित्त को शुद्ध एवं स्थिर कर लिया है ऐसे सज्जन पुरुष भी जब विशेष तेजस्वी महान् पुरुषों को देखते हैं तो उनके प्रति अत्यधिक आदर–सम्मान की क्रिया उनके लिये स्वाभाविक रूप से हो जाती है। यद्यपि वे सभी को समान आदर देते हैं। तथापि विशिष्ट अतिथि के प्रति विशेष सम्मान एवं गौरव होता ही है।

विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां, परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।
उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा, प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रमः।।32।।

प्रसंग – अतिथिसत्कार ग्रहण करने के पश्चात् ब्रह्माचारी का शिष्टाचार वर्णित है –

सप्रसंग अनुवाद – उस ब्रह्मचारी ने पार्वती के द्वारा की गई विधिपूर्वक पूजा को स्वीकार किया तथा थोड़ी देर अपना परिश्रम दूर किया। फिर सरल दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए पूर्वापरक्रम का परित्याग किये बिना अर्थात् शिष्टाचार पूर्वक कहना प्रारम्भ किया।

भावार्थ – उस जटाधारी ब्रह्मचारी ने पार्वती द्वारा विधिपूर्वक सम्पन्न की गई पूजा को स्वीकार किया तथा वह थोड़ी देर श्रम दूर करने का नाटक करता रहा। फिर पार्वती की ओर विलासरहित नेत्रों से देखता हुआ कहने लगा लेकिन उसके कथन में वार्तालाप का उचित क्रम था अर्थात् शिष्टाचार का पूर्व निर्वाह करते हुए बोला।।32।।

व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणियाँ – विधिना प्रयुक्तां विधि प्रयुक्तां तृतीया तत्पुरुष। परिगृह्य – परि + ग्रह् + क्त्वा + ल्यप् आदेश। विनीय – वि + नी + क्त्वा + ल्यप् आदेश। पश्यन् – दृश् + शतृ प्रत्यय। न उज्झितः क्रमः येन सः अनुज्झितक्रमः बहुब्रीहि समास। वक्तुम्– बूञ् + तुमुन् प्रत्यय। प्रचक्रमे – प्र + क्रम् + लिट् लकार।

काव्यगत वैशिष्ट्य – छंद – अलंकार – छंद वंशस्थ।

अलंकार – 'ॠृजुना' इसके द्वारा कटाक्षादि का व्यावर्तन होने से परिसंख्या अलंकार।

लक्षण –

प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत्।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा भवेत्।।

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं, जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।

अपि स्वशक्त्या तपसि प्रर्क्तसे, शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।।33।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी की पार्वती की तप विषयक जिज्ञासा का वर्णन है ।

अनुवाद – आगन्तुक ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है – है तपस्विनि! क्या तुझे यहाँ हवनादि कार्यों के लिये यज्ञकाष्ठ अर्थात् समिधाएं एवं दर्भादि आसानी से मिल जाते है? तेरे स्नानादि के लिये जल तो उपलब्ध है? तुम अपनी शक्ति अनुसार ही तप करती हो? क्योंकि शरीर ही धर्म करने का पहला साधन है।

भावार्थ – पार्वती का तपःस्थल एक शिखर था बाद में गौरी शिखर के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया। ब्रह्मचारी ने पूछा कि इस उच्च स्थान पर बर्फादि जमी रहने से तथा वनस्पति कम होने से यज्ञ की क्रियाओं हेतु समिधा कुशादि आसानी से मिल जाते हैं या नहीं, स्नान हेतु जलादि सुलभ होता है या नहीं तथा जो तपस्या तुम कर रही हो वह अपने शरीर की सामर्थ्य अनुसार ही कर रही हो या नहीं, क्योंकि धर्म का प्रथम साधन तो वही है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – अपि शब्द प्रश्नसूचक है। समिधश्च कुशाश्च समित्कुशम् द्वन्द्व समास। सुलभं – सु + लभ् + खल् प्रत्यय। स्नानस्य विधिः स्नानविधिः– षष्ठी तत्पुरुष, स्नानविधेः क्षमाणि स्नानविधिक्षमाणि। धर्मस्य साधनं– धर्मसाधनं षष्ठी तत्पुरुष। प्रवत्तसे – प्र + वृत् + लट् लकार

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – अलंकार – छंद – वंशस्थ। **अलंकार** – अर्थान्तरन्यास – शरीरं खलु धर्मसाधनं इस सामान्य से 'अपि स्वशक्त्या तपसि प्रर्क्तसे' विशेष का समर्थन किये जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार।

सूक्ति – व्याख्या – शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् – इस सूक्ति का अर्थ है कि धर्म का सर्वप्रथम साधन तो शरीर ही है। अतः शरीर की सुरक्षा एवं उसके स्वस्थ होने पर ही धर्म के कार्य सम्भव हैं। धर्म का प्रमुख साधन शरीर ही है। इसको सामर्थ्य से अधिक तपश्चर्या द्वारा पीड़ित करना उचित नहीं।

अपि त्वदावर्जितवारिसम्भृतं, प्रवालमासानुबन्धि वीरुधाम्।
चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते तुलां यदारोहति दन्तवाससा।।34।।

प्रसंग – पार्वती द्वारा सींचे गए वृक्ष विषयक प्रश्न के ब्याज से उसके सौन्दर्य की प्रशंसा है–

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से फिर पूछता है कि क्या तेरे द्वारा सींचे गये जल से उत्पन्न हुई लताओं में लगातार नये कोंपल निकलते हैं, जो पल्लव तेरे उन होठों की समानता करते हैं जो चिरकाल से लाक्षारस से नहीं रंगे जाने पर भी लाल हैं।

भावार्थ – ब्रह्मचारी वेशधारी शिवजी पार्वती के अधरोष्ठ के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसके द्वारा उगाई गई लताओं के पल्लवों की तुलना उसके अधरोष्ठ से कर रहे हैं जिन पर यद्यपि बहुत दिनों से अलक्तक रस नहीं लगाया गया फिर भी उनकी लालिमा में कोई कमी नहीं आई।।34।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – त्वदावर्जितं – त्वया आवर्जितं (तृतीया तत्पुरुष)। त्वदावर्जितवारिणा सम्भृतं – त्वदावर्जितवारिसम्भृतं (तृतीया तत्पुरुष)। अनुबन्धि – अनु + बन्ध + इनि 'अत इनि ठनौ' सूत्र से इनि प्रत्यय। दन्तानां वाससा दन्तवाससा षष्ठी तत्पुरुष। दन्तवाससा में तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां सूत्र से तृतीया विभक्ति। आरोहति – आ + रूह् + लट् लकार।

काव्यगत वैशस्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – प्रतीप अलंकार। प्रसिद्ध उपमान पल्लव का सादृश्य उपमेय ओष्ठ से करने के कारण।

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमयेत्व प्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते।।

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः, करस्थदर्भप्रणयापहारिषु।
य उत्पलाक्षि! प्रचलैर्विलोचनै, स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जंते।।35।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती से तपस्या काल में उसकी मनः अवस्था के विषय में पूछता है–

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से पुनः कहता है – हे कमल के समान नेत्रों वाली! तेरा मन उन हरिणों में प्रसन्न तो रहता है जो तेरे हाथ पर रखे हुए कुशों को प्रेमपूर्वक छीन लेते हैं और अपने चंचल नेत्रों से ये तेरे नेत्रों की तुलना सी करते हैं।

भावार्थ – यद्यपि ये हरिण तेरे हाथों से कुशाओं को तेरे से प्रेम के कारण झपट लेते हैं फिर भी तू इन पर क्रोधित नहीं होती। ये अपने नेत्रों की तुलना तेरे सुन्दर नेत्रों से किया करते है, ये भी इनका अपराध ही है फिर तू इन पर क्रोध नहीं करती। तपस्विनी होने से तूने क्रोध पर संयम कर लिया है। प्रकारान्तर से ब्रह्मचारी वेशधारी शिव पार्वती के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहे हैं।।35।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ –

अपि प्रश्नसूचक – 'गर्हा समुच्चयप्रश्नशंकासम्भावनास्वपि,। करे निष्ठन्ति इति करस्थाः कर + स्था + क प्रत्यय। प्रणय – प्र + नी + अच्।

अपहारिषु – अप + हृ + णिनि, 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'।

उत्पलाक्षि – उत्पले इव अक्षिणी यस्या सा उत्पलाक्षी बहुब्रीहि, सम्बोधन में ह्रस्व। अक्ष्णोः सादृश्यम् षष्ठी तत्पुरुष। सादृश्यम् – सदृश + ष्यञ् – गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – प्रसिद्ध उपमान भूत हरिण के नेत्रों की समता उपमेय भूत पार्वती के नेत्रों से करने के कारण – प्रतीप अलंकार।

यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये, न रूपमित्यव्यभिचारि तद् वचः।
तथा हि ते शीलमुदारदर्शने, तपस्विनामप्युपदेशतां गतम्।।36।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती को नाम से सम्बोधित करते हुए उसके सौन्दर्य एवं शील की प्रशंसा करता है।

अनुवाद – हे पार्वती! यह जो उक्ति है कि सौन्दर्य पापकर्म के लिये नहीं होता बिल्कुल सत्य है क्योंकि हे सुन्दर आकृति वाली तूने अपने सदाचरण से तपस्वियों को भी उपदेश दे दिया है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी का कथन है कि हे पार्वती तू इतनी सुन्दर होकर भी इतना कठोर तप कर रही है इससे यह लोकोक्ति सत्य सिद्ध होती है कि सौन्दर्य कभी पापकर्म के लिये नहीं होता और दूसरी बात यह है कि तेरा यह कठोर तप एवं सदाचार तपस्वियों को भी उपदेश देने वाला अर्थात् उनके लिये भी प्रेरक बन गया है।।36।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – पार्वति – पर्वतस्य अपत्यं स्त्री पार्वती। पर्वत + अण् + ङीप् सम्बोधन में ह्रस्व। पापस्य वृत्ति पापवृत्ति तस्यै पापवृत्तये (षष्ठी तत्पुरुष)। अव्यभिचारि – न + वि + अभि + चर् धातु + णिनि, न व्यभिचरति इति अव्यभिचारि नञ् समास। उदारं दर्शनं यस्या सा उदारदर्शना (बहुब्रीहि) सम्बोधन में उदारदर्शने! उपदेशताम् – उपदिश्यते इति उपदेशः, उप + दिश् + घञ् तस्य भावः उपदेश + तल्।

काव्यगत वैशिष्ट्य – छंद–वशंस्थ। अलंकार– अर्थान्तरन्यास। अप्रकृत लोकोक्ति का पार्वती के शीलदर्शन रूप प्रकृत अर्थ से समर्थन।

सूक्ति–व्याख्या – पापवृत्तये न रूपम् – सुन्दर रूप पाप कर्म में प्रवृत्त नहीं होता। जिसकी आकृति सुन्दर है वह आचरण से भी शीलवान् होता है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतलम् में भी 'न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति' कहकर इसी का समर्थन किया है। अतः यह लोकोक्ति सत्य ही है।

विकीर्ण– सप्तर्षि – बलि– प्रहासिभि, स्तथा न गाड्.गैः सलिलैर्दिवश्च्युतैः।
यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः।।37।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती के शील की तुलना गंगाजल से करते हुए उसके उससे भी अधिक पवित्र होने की बात कहता है।

अनुवाद – ब्रह्मचारी कहता है–यह हिमालय आकाश से गिरने वाले तथा सप्तर्षियों के पुष्पोपहार से युक्त, इस गंगाजल से भी उतना पवित्र नहीं हुआ जितना कि तेरे निर्दोष चरित्रों से सपरिवार पवित्र हुआ है।

भावार्थ – शिवजी कहते हैं कि तेरा पिता हिमालय तेरे जन्म से धन्य हो गया है। गंगा स्वयं पवित्र है और सप्तर्षियों द्वारा पूजा के पुष्पों की भेंट से वह और पवित्र हो जाती है किन्तु तेरा आचरण तो उससे भी ज्यादा पावन है। तेरे इस पवित्र चरित्र से हिमालय अपने समस्त परिवार सहित पवित्र एवं धन्य हो गया है।।37।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – महीं धरतीति महीधरः मही + धृ + अच्। विकीर्ण – वि + कॄ + क्त प्रत्यय। सप्तर्षि – दिक्संख्ये संज्ञायां से द्विगु समास। गाड़गैः – गड़गाया इमानि तैः, गाड़गम् – गड़गा + अण् तस्येदम् सूत्र से। पावितः – पू + णिच् + क्त कर्म में। सलिलैः और चरितैः में कर्ता में तृतीवा विभक्ति – कर्तृकरणयोस्तृतीया सूत्र से। न आविलैः अनाविलैः नञ् समास।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ। **अलंकार** – उपमान गंगाजल की अपेक्षा उपमेय पार्वती के शील का आधिक्य वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार।

उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

अनेन धर्मः सविशेषमद्य ते, त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि!
त्वया मनो निर्विषयार्थकामयां, यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते।।38।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती के तप की प्रशंसा करता है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी कहता है कि हे सुन्दर विचारों वाली! इस तेरे तप को देखकर आज मुझे त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम में से धर्म ही श्रेष्ठ जान पड़ रहा है क्योंकि काम और अर्थ का त्यागकर तेरे मन ने केवल एक मात्र धर्म का ही आश्रय लिया है।

भावार्थ– संसार में प्रायः सभी लोगों की भोग विलास अर्थात् अर्थ एवं काम के प्रति ही लालसा देखी जाती है किंतु तूने मन को विषयशून्य करके काम और अर्थ का त्याग कर दिया है एवं अपना मन केवल धर्म में ही लगाया है। अतः निश्चित रूप से तेरी इस तपस्या को देखते हुए मुझे आज तीनों में से धर्म की ही उत्तमता एवं श्रेष्ठता को ज्ञान हुआ है।।38।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – भाविनि – प्रशस्तः भावः अस्या इति भाविनी प्राशस्त्य अर्थ में इनि प्रत्यय, सम्बोधन में ह्रस्व। त्रिवर्गः– त्रयाणां वर्गः (षष्ठी तत्पुरुष), त्रिवर्गेसारः त्रिवर्गसारः (सप्तमी तत्पुरुष)। अर्थश्च कामश्च अर्थकामौ (द्वन्द्वसमास)।

प्रतिंगृह्य – प्रति – ग्रह् क्त्वा और ल्यप् आदेश। एकः – सेव्यते का उक्त कर्म होने से प्रथमा विभक्ति।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – अनुमान अलंकार। पार्वती की धर्म सेवा से धर्म की प्रधानता का अनुमान होने से।

प्रयुक्त–सत्कार–विशेषमात्मना, न मां परं सम्प्रतिपत्तुमर्हसि।
यतः सतां सन्नतगात्रि। संगतं मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते।।39।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती से अपनी मित्रता को परिभाषित कर रहा है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि तूने स्वयं मेरा विशेष सत्कार किया है अतः अब तू मुझे पराया मत समझ। है सुंदर अंगो वाली बुद्धिमान लोग सज्जनों की मित्रता को सात पदों से उत्पन्न मानते हैं।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कहने का तात्पर्य यह है कि हे पार्वती! तूने स्वयं मुझे पूरा मान सम्मान दिया और आगे बढ़कर मेरा अतिथि सत्कार किया। अब तेरे और मेरे बीच कुछ बातचीत भी हो गई है, अतः अब तू मुझे पराया मत जान क्योंकि सज्जनों में ऐसे ही मित्रता हो जाती है। और हमारे बीच भी अब मैत्री हो गई है।।39।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – प्रयुक्तसत्कारविशेषं – प्रयुक्तः सत्कारविशेषः यस्मैः सः तम् (बहुब्रीहि समाज) प्रयुक्त – प्र + युज् + क्त। सम्प्रतिपत्तुम् – सम् + प्रति + पद् + तुमुन् प्रत्यय। सन्नतगात्रि – सम्यक् नतानि गात्राणि यस्याः सा। सप्तपदीनम् – सप्तभिः पदैः अवाप्यते इति सप्तपदीनम्

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ। **अलंकार** – अर्थान्तरन्यास। मुझे पराया मत समझो इस विशेष का सज्जनों की मैत्री सात पेदों से सम्पन्न होती है इस सामान्य से समर्थन होने से।

सूक्ति– व्याख्या – सतां सङ्गतं साप्तपदीनमुच्यते अर्थात् सज्जनों की मैत्री परस्पर सात पदों के उच्चारण मात्र से ही सम्पन्न हो जाती है। जो लोग सच्चरित्र हैं वे थोड़ी सी देर की बातचीत में भी एक दूसरे के मित्र बन जाते हैं।

अतोऽत्र किंचिद् भवतीं बहुक्षमां, द्विजातिभावादुपपन्नचापलः।
अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने, न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि।।40।।

प्रसंग – इस प्रकार ब्रह्मचारी पार्वती को मैत्री हो जाने का वास्ता देकर उसके तप का कारण पूछता है।

अनुवाद – वह कहता है – हे तपस्विनी! आप क्षमाशील हो अतः ब्राह्मण होने के कारण उत्सुकतावश मैं कुछ पूछने की इच्छा रखता हूँ यदि गोपनीय न हो तो मुझे उत्तर देने की कृपा कीजिए।

भावार्थ – ब्रह्मचारी अत्यन्त शिष्टता एवं विनम्रतापूर्वक पार्वती से इसके सम्बन्ध में कुछ पूछना चाहता है अतः कहता है कि आप तप रूपी धन वाली हैं एवं अत्यन्त सहनशील हैं। हम दोनों में मैत्री भाव भी हो गया है, अतः ब्राह्मण होने से कुछ चपलता या उत्सुकतावश आपके विषय में जानना चाहता हूँ। यदि अत्यन्त गुप्त न हो तो मुझे अवश्य बताना। क्रोधित मत होना।।40।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – तपोधने – तपः एव धनं यस्या सा बहुब्रीहि सम्बोधन में तपोधने। द्विजातेः भावः तस्माद् द्विजातिभावात्, षष्ठी तत्पुरुष। उपपन्नं चापलं यस्य सः उपपन्नचापल– बहुब्रीहि। उप + पद् + क्त। चपलस्य भावः चापलम् चपल + अण्। प्रष्टुं मनः यस्य स प्रष्टुमनाः बहुब्रीहि। रहसि भवं रहस्यं रहः + यत्। प्रति + ब्रू + तुमुन् – प्रतिवक्तुम्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – परिकर अलंकार। पार्वती के लिये तपोधना, बहुक्षमा विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग होने से

– ''विशेषणैर्यत् साकूतैरूक्तिः परिकरस्तु सः''

कूले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधस, स्त्रिलोक– सौन्दर्य भिवोदितं वपुः।
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वय, स्तपः फले स्यात् किमतः परं वद।।41।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी अपने मन का प्रश्न पार्वती के सामने रखते हुए कहता है कि

अनुवाद – हे पार्वति तुम्हारा जन्म आदिब्रह्मा के श्रेष्ठ कुल में हुआ है, शरीर मानो तीनों लोकों के सौन्दर्य को लेकर उत्पन्न हुआ है, सम्पत्ति का सुख इतना है कि कहीं अन्यत्र खोजे नहीं मिलेगा, और अभी तेरी नवीन युवावस्था है, इससे अधिक तपस्या का फल क्या होगा? यह तू ही बता।

भावार्थ – ब्रह्मचारी कहता है कि जिन सुखों या फलों की प्राप्ति हेतु जगत् में तपस्या की जाती है वे तो सभी तुझे प्राप्त हैं। उंचे कुल में जन्म, अलौकिक सौन्दर्य सभी प्रकार का ऐश्वर्य और नवयौवन फिर तू किसलिये तप कर रही है यह तू स्वयं ही बता सकती है। इन सबसे बढ़कर कौनसा फल तू पाना चाहती है। यह मुझे बता, जिसके लिये तू ऐसा कठोर तप कर रही है।।41।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – त्रिलोकसौन्दर्यम् – त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकम्, त्रिलोकानां सौन्दर्यम् त्रिलोक सौन्दर्यम् षष्ठी तत्पुरुष। उदितम् + उद् + इण् + क्त। ऐश्वर्यम् – ईश्वरस्य भावः ईश्वर + ष्यञ्। अमृग्यम् – न मृग्यम् इति अमृग्यम् नञ् तत्पुरुष। मृग्यम् – मृण् + यत्। तपसः फलम् तपःफलम् षष्ठी तत्पुरुष।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – उत्प्रेक्षा। शरीर मानों तीनों लोकों के सौन्दर्य को पूंजीभूत कर निर्मित हो इस संभावना के होने से। **सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।**

भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्, मनंस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी।
विचारमार्ग प्रहितेन चेतसा, न दृश्यते तत्र कृशोदरि! त्वयि।।42।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती के तप के कारण के विषय में अपने मन की कल्पना प्रस्तुत करता है–

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि यदि मानिनी स्त्रियों को असह्य दुःख (पति की प्रताड़ना) झेलना पड़े तो भी उनकी इस प्रकार की प्रवृत्ति देखी जाती है किन्तु हे कृशोदरी तुम्हारे विषय में विचार करने पर ऐसा दिखाई नहीं देता।

भावार्थ – ब्रह्मचारी का कथन है कि प्राय स्वाभिमानी स्त्रियाँ यदि घर पर पति आदि से अपमानित होती हैं तो अनिष्ट को दूर करने हेतु तप आदि करती हैं लेकिन तेरे विषय में ऐसा तो सम्भव नहीं है कि तू किसी अनिष्ट को दूर करने के लिये तप कर रही हो। जैसा कि मैं समझता हूँ तेरे साथ किसी अनिष्ट प्राप्ति की कोई सम्भावना दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती।।42।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – दुःसहात् – दुःखेन सह्यते इति दुःसहः, तस्मात् ईषद्दुःसुषुकृच्छाकृच्छार्थेषु खल् सूत्र से खल् प्रत्यय। अनिष्टात् – न ईष्टम् अनिष्टम् नञ् तत्पुरुष तस्मात्। मनस्विनीनां – मनस् + विन् + ङीप्। प्रतिपत्तिः – प्रति + पद् + क्तिन् प्रत्यय। कृशोदरि – कृशं उदरं यस्याः सा कृशोदरी सम्बोधन में कृशोदरि। विचारमार्गप्रहितेन – विचारस्य मार्गः विचारमार्गः (षष्ठी तत्पुरुष), विचारमार्गे प्रहितेन इति विचारमार्गप्रहितेन सप्तमी तत्पुरुष। प्रहित–प्र+धा+क्त प्रत्यय। चेतसा में कर्तृकरणयोस्तृतीया से करण में तृतीया विभक्ति। दृश्यते – दृश् + लट् कर्म में।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलभ्य – शोकाभिभवेयमाकृति, र्विमानना सुभ्रु! कुतः पितुर्गृहे?

पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं, प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये ?।।43।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती के द्वारा कठोर तप किये जाने के कारण का अनुसंधान करते हुए कहता है कि

अनुवाद – हे सुन्दर भौहों वाली! तुम्हारी यह सुन्दर आकृति शोक और अपमान जन्य दुःख के योग्य नहीं है, पिता के घर में तो अपमान का प्रश्न ही नहीं। किसी अन्य के द्वारा बलात्कारादि की कैसे सम्भावना हो सकती है क्योंकि कौन मूर्ख होगा जो सांप की मणि लेने के लिये हाथ फैलायगा?

भावार्थ – ब्रहम्चारी के कथन का तात्पर्य यह है कि यदि पार्वती पति आदि द्वारा अपमानित होकर तपस्या की ओर प्रवृत्त हुई है तो इसकी कोई संभावना नहीं क्योंकि ऐसी सुन्दर आकृति दुःख व अपमान के योग्य नहीं। पिता के घर तो अपमान की कोई सम्भावना ही नहीं और यदि यह माना जाय कि किसी कामी पुरुष द्वारा बलात्कार का दुःसाहस किया गया हो तो ऐसी तेजस्विनी और कुलीन कन्या पर ऐसा कौन करेगा। सांप की मणि लेने के लिये कौन हाथ पसारता है। तो ये तीनों तो कारण नहीं हो सकते।।43।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – सुभ्रु – शोभने भ्रुवौ यस्याः सा बहुब्रीहि। न लभ्यः अलभ्यः नञ् तत्पुरुष लभ् + यत्। विमानना – वि+मान् + युच्।

पराभिमर्शः – परेण अभिमर्शः तृतीया तत्पुरुष। कुतः – किम् + तसिल्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – प्रस्तुत में वर्णनीय वाक्यार्थ का प्रतिबिम्ब होने के कारण ललित अलंकार –

प्रस्तुते वर्ण्य वाक्यार्थप्रतिबिम्बस्य वर्णनं ललितं।

अन्य के अनुसार प्रतिवस्तूपमा या निदर्शना है।

किमित्यपास्या भरणानि यौवने, धृतंत्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोष स्फुटचन्द्रतारका, विभावरी यद्यरुणाय कल्पते।।44।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती से वतकल धारण करने का कारण पूछता है कि

अनुवाद – वह बताए कि उसने आभूषण धारण करने योग्य युवावस्था में उनको त्यागकर वृद्धावस्था की शोभा बढ़ाने वाला वल्कल क्यों धारण कर लिया। क्या कोई संध्या के समय चमकते तारों और चन्द्रमा वाली रात्रि में सूर्योदय की कल्पना करता है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कथन का तात्पर्य है कि वह जानना चाहता है कि पार्वती ने यह असंगत व्यवहार क्यों किया है उसकी आभूषण पहनने की उम्र हैं – उसमें उसने बुढ़ापे के योग्य वल्कल वस्त्र धारण कर रखे हैं यही उसी प्रकार असंगत है जैसे सायंकाल ही चांद और तारों का नाश होकर सूर्योदय की कल्पना करना है। उसी प्रकार पार्वती द्वारा जवानी में आभूषणों को छोड़कर वल्कल धारण करना भी असंगत है।।44।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – यौवनं – यूनः भावः यौवनम् युवन् + अण् युवादित्वात् सूत्र से भाव में। अपास्य – अप + आस् + क्त्वा को ल्यप्। वार्द्धकम् – वृद्धस्य भावः वृद्ध + वुञ्। चन्द्रतारकाः – चन्द्रः च तारकाः च द्वन्द्व समास। स्फुटाः चन्द्रतारकाः यस्यां सा बहुब्रीहिसमास। अरुणाय – क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः इस सूत्र से चतुर्थी। अरुणं गन्तुं – अरुणोदयं कर्तुं यह अर्थ है।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – यहाँ यदि अर्थोक्ति में अतिशयोक्ति है – प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्। कुछ

के अनुसार निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा भी हो सकती है।

दिवः यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूभयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना, न रत्नमन्विष्यति मृग्यतेहि तत्।।45।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी अनुमान से तपस्या का कारण स्वर्ग प्राप्ति समझकर स्वर्ग हेतु तपस्या की निरर्थकता का प्रतिपादन करता है –

अनुवाद – पार्वती को ब्रह्मचारी कहता है कि यदि वह यह तप स्वर्ग प्राप्त करने के लिये कर रही है तो उसका तप करना व्यर्थ है क्योंकि हे पार्वती तुम्हारे पिता के प्रदेश अर्थात् हिमालय की भूमियाँ स्वयं स्वर्ग ही हैं, देवताओं का निवास स्थान हैं। और यदि यह तप पति को प्राप्त करने के लिये है तो तपस्या व्यर्थ है क्योंकि रत्न को खोजा जाता है वह स्वयं कन्यारत्न है। उसे किसी को खोजने की आवश्यकता नहीं है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि उसके पिता का प्रदेश हिमालय स्वयं देवताओं का निवास स्थान होने से स्वर्ग ही है। अतः स्वर्ग की कामना से तप करना व्यर्थ है। और यदि वह पति की कामना से ऐसा कर रही है तो वह भी बेकार है क्योंकि स्त्री रत्न को पाने के लिये तो स्वयं पतिदेव ही आ पहुंचते हैं। ब्रह्मचारी वेशधारी शिव ने अपना गूढ़ अभिप्राय व्यक्त कर दिया है कि वे स्वयं उसको खोजते हुए आ पहुंचे है।।45।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – देवभूमयः – देवानां भूमयः (षष्ठी तत्पुरुष)। उपयन्तारम् – उप + यम् + तृच् प्रत्यय। समाधिना– सम्+आ+धा+कि उपसर्गे धोः किः सूत्र से कि प्रत्यय। समाधिना में तृतीया अलं के योग में मृग्यते – मृज् + यत् कर्मणि लट्। प्रार्थयसे – प्र + अर्थ + णिच् + लट्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – अर्थान्तरन्यास। रत्न खोजता नहीं खोजा जाता हैं इस सामान्य के द्वारा पति के लिये तपस्या की आवश्यकता नहीं है इस विशेष का समर्थन किया गया है।

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्

सूक्ति – व्याख्या – इस सूक्ति का अर्थ है कि रत्न के पारखी स्वयं रत्न को ढूंढ़ते हुए उसके पास आ जाते हैं। रत्न को स्वयं खोज नहीं करनी पड़ती। उसके गुणों से आकर्षित होकर गुणग्राही स्वयं खोजते हुए उसके पास आते है, रत्न को कहीं जाना नहीं पड़ता। उसकी खोज की जाती है। वह खोजता नहीं है।

निवेदितं निःश्वसितेन सोष्मणा, मनस्तु में संशयमेव गाहते।
न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते, भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्।।46।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती की तपस्या के कारण को अनुमान लगाकर भी तप की व्यर्थता को कहता है–

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि हे पार्वति। यद्यपि तेरे गरम श्वास लेने से मैं सब कुछ जान गया हूँ फिर भी मेरा मन संदेह में पड़ा हुआ है। क्योंकि मुझे ऐसा कोई तेरा अभिलषित नहीं दिखाई देता जिसे तू चाहे और वह तुझे अप्राप्य बना रहे।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कथन का तात्पर्य यह है कि यद्यपि तूने मेरे द्वारा पति प्राप्ति की बात पूछने पर गरम श्वास छोड़ी उससे मेरी समझ में काफी कुछ आ गया है मैं तेरे हृदय की बात समझ गया हूँ। लेकिन मेरे मन में यही संदेह है तेरा प्रार्थित ऐसा मुझे कोई दिखाई नहीं देता जो तेरे चाहने पर तेरे लिये दुर्लभ रहे। यह तो असम्भव ही है कि तू जिसे पाना चाहे वह तुझे नहीं मिले क्योंकि तेरी जैसी गुणी को

कौन पाना नहीं चाहेगा।46।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – सोष्मणा – ऊष्मणा सह वर्तते इति सोष्म तेन सोष्मणा, बहुब्रीहि। निवेदितम् – नि + विद् से कर्म में क्त प्रत्यय। प्रार्थयितव्यः – प्र + अर्थ + णिच् + तव्यत् – तव्यत्तव्यानीयरः सूत्र से। दुर्लभः– दुर् + लभ् + खल् प्रत्यय। ते – षष्ठी विभक्ति कृत्यां कर्तरि वा सूत्र से। मे – षष्ठी शेषे से षष्ठी।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – काव्यलिङ्ग। संशय का हेतु से समर्थन करने के कारण वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलंकार है – **'हेतौवाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्।'**

अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा, चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।
उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः, कपोलदेशे कलमाग्रपिंगलाः।।47।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती के मन की इच्छा को जानकर उसके अभिलाषित वर की भर्त्सना करता है–

अनुवाद – ब्रह्मचारी कहता है कि है पार्वति! यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि वह तेरा चाहा हुआ युवक बड़ा ही कठोर है। जो चिरकाल से कर्णोत्पल नहीं पहने जाने के कारण तेरे कपोल स्थल पर ढ़ीली बंधी हुई एवं लटकती हुई धान के समान कुछ–कुछ लाल रंग वाली इन जटाओं की भी उपेक्षा कर रहा है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कथन का तात्पर्य यह है वह पार्वती से कहता है कि तेरा प्रार्थित प्रेमी युवक निश्चय ही बड़ा कठोर हृदय है, जो तप के कारण तेरी दुर्दशा हो रही है उसे देखकर भी वह द्रवीभूत नहीं होता। कानों में कर्णफूल पहनना छोड़ने के कारण तेरे कपोल सूने लगते हैं, बालों को संवारना छोड़ने से वे जटाओं में बदल गये हैं और पीले पड़कर गालों पर लटक गये हैं। ब्रह्मचारी ने अब पार्वती के प्रार्थित प्रेमी की निंदा करनी प्रारम्भ कर दी है।।47।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – ईप्सितः – आप्तुम् इष्टः आप् + सन् + क्त। तव में षष्ठी विभक्ति 'क्तस्य च वर्तमाने' सूत्र से। कर्णोत्पलं – कर्णयोः उत्पलम् सप्तमी तत्पुरुषः। लम्बिनी – लम्ब् + णिनि। उपेक्षते – उप + ईक्ष् + लट्। गते – गम् + शतृ प्रत्यय। कपोलदेशे – कपोले एव देशे – सप्तमी विभक्ति।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – उल्लास अलंकार। पार्वती के सौदर्न्य से उसके अभीष्ट युवक में कठोर हृदय की दोष कल्पना होने से।

एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि।

मुनिव्रतैस्त्वामति मात्रकर्षितां, दिवाकराप्लुष्ट विभूषणास्पदाम्।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सचेतसः कस्य मनो न दूयते।।48।।

सप्रसंग अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती के अभीष्ट युवक को कठोरचित्त बताते हुए कहता है कि हे पार्वती! तू मुनियों के योग्य कठोर व्रतों को करने के कारण अत्यन्त कृश हो गई हैं, आभूषण धारण करने योग्य अंग सूर्य के ताप से झुलस गये हैं, दिन में जैसे चन्द्रमा की रेखा निस्तेज हो जाती है ऐसी तेरी दशा देखकर किसका मन दुःखी नहीं होता है। तेरी ऐसी दशा देखकर भी वह निर्दयी नहीं पिघला।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कथन का तात्पर्य यह है कि हे पार्वती! जो कठोर तपस्या मुनि लोग करते हैं ऐसी तपस्या से तेरा शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया है, जिन हाथ, नाक, कान आदि अंगों में आभूषण

धारण किये जाने चाहिये थे वे सूर्य के उत्कट ताप से जलकर काले हो गये हैं, दिन के समय निस्तेज चंद्ररेखा के समान तेरी दशा देखकर किसी का भी मन दुःखी ही होता फिर भी यह तेरा अभीष्ट युवक तुझ पर तरस नहीं खा रहा है।।48।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – मुनिव्रतैः मुनीनां व्रतैः षष्ठी तत्पुरुष। अतिमात्रकर्शितां – मात्रां अतिक्रान्तं इति अतिमात्रं अतिमात्रं कर्शितां (केवल समास)। दिवाकरः दिवा करोतीति दिवा+कृ+ट प्रत्यय। दिवाकरेण आप्लुष्टानि (तृतीया तत्पुरुष) दिवाकराप्लुष्टानि विभूषणानां आस्पदानि (षष्ठी तत्पुरुष) यस्याः सा तां बहुब्रीहि। आप्लुष्ट–आ + प्लुष् + क्त प्रत्यय। शशाङ्कलेखां – शशाङ्कस्य लेखा तां (षष्ठी तत्पुरुष)। दूयते–दूङ् + श्यन् + त।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – उपमा। उपमेय–पार्वती, उपमान–चन्द्रलेखा।

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरूल्लसति द्वयोः।

अवैमि सौभाग्यमदेन वंचितं, तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।
करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो, न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः।।49।।

प्रसंग – पार्वती के अभिलाषित वर की निन्दा करते हुए कहता है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से फिर कहता है कि मैं तेरे प्रिय वर को अपने सौन्दर्य के गर्व से छला हुआ समझता हूँ, जो उसमें तेरी सुन्दर चितवन वाली और टेढ़ी बरौनियाँ वाली दृष्टि के सामने चिरकाल तक अपने मुख को उपस्थित नहीं किया है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी कहता है कि वह व्यक्ति जिसे तू पाना चाहती है बड़ा अभागा है और अपने सौभाग्य से वंचित है जो अब तक तेरे इतना कठोर तप करने के बाद भी तेरे सामने नहीं आया। यह उसका ही दुर्भाग्य है कि वह तेरी सुन्दर चितवन एवं तिरछी पलकों वाली नजर का निशाना नहीं बना। अतः वह सौभाग्य मद से खुद ही ठगा गया है।।49।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – प्रियं – प्री + क प्रत्यय इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। सौभाग्यस्य मदः सौभाग्यमदः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन सौभाग्यमदेन। वंचितं – वंच् + क्त प्रत्यय। अवैमि – अव + इण् + लट्। आत्मीयम् – आत्मनः इदम् आत्मन् + छ प्रत्यय। चतुरम् अवलोकते इति चतुरावलोकि तस्य, चतुर + लोक + णिनि प्रत्यय। अरालानि पक्ष्माणि यस्य सः तस्यं अरालपक्ष्मणः बहुब्रीहि समास। चक्षुषः में षष्ठी विभक्ति कृत्यानां कर्तरि वा सूत्र से हुई है।

छंद – वंशस्थ

अलंकार – अनुमान अलंकार।

काव्यगत वैशिष्ट्य हेतु के द्वारा साध्य के साधन से अनुमान अलंकार। चक्षु के सौन्दर्य गुण से पार्वती के प्रिय के दोष कथन से उल्लास अलंकार।

कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि,। विद्यते, ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्धभागेन लभस्व कांक्षितं, वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्।।50।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती को एक प्रस्ताव देने के बहाने उसके प्रिय वर के विषय में पूछता है –

अनुवाद – हे पार्वति। तुम कब तक तपस्या करती रहोगी। मेरे पास भी ब्रह्मचर्याश्रम में किया हुआ तप है, उसका आधा भाग मैं तुम्हें, अपने वर प्राप्ति हेतु देता हूँ किन्तु उससे पहले मैं उस वर के विषय में अच्छी तरह जानना चाहता हूँ।

भावार्थ – ब्रह्मचारी पार्वती को कहता है कि तेरी इस दशा पर मुझे तरस आ रहा है आखिर तू कब

तक तपस्या करती रहेगी अतः मेरे ब्रह्मचर्याश्रम में संचित तप के आधे भाग से तू अपना अभिलषित वर प्राप्त कर ले पर पहले मै उसको अच्छी तरह जान लूँ, अर्थात् वह तेरे योग्य है या नहीं। इसे जान लूं अतः मुझे बता कि तू यह कठोर तप किसके लिये कर रही है।।50।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – श्राम्यसि – श्रमु + श्यन् + लट्। पूर्वाश्रमसंचितं पूर्वस्मिन् आश्रमे संचितं णिच् + (सप्तमी तत्पुरुष) लभस्व – लभ् + लोट् लकार। वेदितुम् – विद् + तुमुन् समानकर्तृकेषु तुमुन् सूत्र से। चिरं में द्वितीया विभक्ति कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे सूत्र से। कियत् – किम् + वतु प्रत्यय/तदर्धभागः अर्द्धः भागः (कर्मधारय) तस्य अर्धभागः षष्ठी तत्पुरुष।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – गूढ़ोक्ति। वर प्राप्ति हेतु अपने तप के फल का आधा भाग दे दूंगा – यह शिवजी की वरदान रूप गूढ़ोक्ति होने से गूढ़ोक्ति अलंकार है।

इति प्रविश्याभिहिंता द्विंजन्मना मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्।
अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं, विवर्तितानन्जननेत्रमैक्षत।।51।।

प्रसंग – पार्वती की मन की बात प्रकट करने में असमर्थता का वर्णन है –

अनुवाद – हृद्रय में प्रवेश कर उस ब्राह्मण ब्रह्मचारी द्वारा वर के विषय में पूछने पर पार्वती अपने मन की बात न कह सकी तब उसने पास में बैठी अपनी सखी की ओर काजलरहित नेत्रों को उसकी ओर घुमाते हुए देखा।

भावार्थ – उस ब्रह्मचारी ने अपनी वाक्पटुता से पार्वती के मन की बात जान कर मानों उसके हृदय को भी वंश में कर लिया फिर भी लज्जा के कारण वह स्वयं अपने मन की बात न कह सकी और काजल रहित नेत्रों को घुमाकर पास बैठी अपनी सखी की ओर देखा। और संकेत किया कि वह उसके वर के विषय में ब्राह्मण को बता दे।।51।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – द्विजन्मना – द्वे जन्मनी यस्य स द्विजन्मा तेन बहुब्रीहि समास। अभिहिता – अभि + धा + क्त + टाप्। दधातेर्हिः से धा के स्थान पर हि हुआ है। मनोगतं – मनसि गतम् सप्तमी तत्पुरुष। प्रविश्य – प्र + विश् + क्त्वा को ल्यप् आदेश। शंसितुम् – शंस् + तुमुन् प्रत्यय। शशाक – शक् + लिट् लकार। वर्तिनी – वृत् + णिनि प्रत्यय। परिपार्श्वे वर्तते इति परिपार्श्ववर्तिनी ताम्। न अंजनं ययोः ते अनंजने। विवर्तिते अनंजने नेत्रे यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथा।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं, निबोध साधो। तव चेत् कुतूहलम्।
यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं, कृतं तपः साधनमेतया वपुः।।52।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर पार्वती की सखी ने देना प्रारम्भ किया।

अनुवाद – पार्वती की सखी ने उस ब्रह्मचारी से कहा हे सज्जन! यदि आपको इतना ही कुतूहल है तो जान लो, जिस प्रयोजन से ये तपस्या में प्रवृत्त हुई है। इसने अपने शरीर को तपस्या का साधन उसी तरह बनाया है जैसे कोई धूप से बचने के लिये कमल का छाता तान ले।

भावार्थ – सखी ब्रह्मचारी से कहती है कि इसने कमल को धूप से बचाने के लिये छत्र के समान अपने शरीर को तपस्या का साधन बनाया है। कमल से धूप को नहीं रोका जा सकता। इसी प्रकार इसने अत्यन्त कोमल अपने शरीर को अत्यन्त कठोर तपस्या में लगाया है और जिस प्रयोजन के निमित्त यह तपस्या कर रही है उसे भी आप जान लें।।52।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – तदीया – तस्याः इयम् तद् + छ प्रत्यय। वर्णी – वर्णः अस्यास्तीतिवर्णन इनि। उवाच – वच् + लिट्। उष्णवारणम् – उष्णस्य वारणम् षष्ठी तत्पुरुष। तपः साधनम् – तपसः साधनम् षष्ठी पुरुष। एतया – कर्तृकरणयोस्तृतीया से कर्त्ता में तृतीया। कृतम् + कृ + क्त प्रत्यय।

इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रिय, श्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्, पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति।।53।।

प्रसंग – पार्वती की सखी उसकी तपस्या के प्रयोजन का रहस्य खोलती हुई ब्रह्मचारी से कहती है –
अनुवाद – यह स्वाभिमानिनी – पार्वती ऐश्वर्यशाली तथा चारों दिशाओं के स्वामी इन्द्र, वरुण, कुबेर एवं यमादि का तिरस्कार करके उन शिवजी को पति रूप में पाना चाहती है जो कामदेव को जीत लेने के कारण सौन्दर्य से नहीं जीते जा सकते हैं।

भावार्थ – सखी कहती है कि यह पार्वती बहुत आत्माभिमानी है। इसकी बड़ी महत्वाकांक्षा है। इसने महान् सम्पत्तिशाली और चारों दिशाओं के स्वामी जिनमें पूर्व दिशा के इन्द्र, उत्तर के कुबेर, पश्चिम के वरूण और यम दक्षिण के हैं, को दुकराकर पति रूप में महादेव शिवजी को पाना चाहा है, जिन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया। अतः उनको सौन्दर्य से नहीं जीता जा सका। अतः ये उनको पाने के लिये कठोर तपस्या में प्रवृत हुई।।53।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – मानिनी – मानः अस्यास्ति मान + इनि + ङीप्। अवमत्य – अव + मन् + क्त्वा को ल्यप् आदेश। निग्रहात् – नि + ग्रह् धातु से हेतु में पंचमी। अरूपहार्यः – न रूपहार्यः (नञ् तत्पुरुष) न रूपेण हार्यः इति रूपहार्यः तम्। हार्यः – हृ + ण्यत् ऋहलोर्ण्यत् सूत्र से। पिनाकपाणिं – पिनाकः पाणौ यस्य सः तम् (बहुब्रीहि समास) । आप्तुम् – आप् + तुमुन्

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – मानिनी आदि विशेषण साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है।

असत्यहुंकारनिवर्तितः पुरा, पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः।
इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्, विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः।।54।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में पार्वती के मन में शिव के प्रति उत्पन्न काम–भाव का वर्णन है–

अनुवाद – पूर्व में ही नष्ट हुई मूर्ति वाले कामदेव का बाण जो शिवजी की हुंकार से लौट गया और इसलिये शिवजी तक जिसका अग्र भाग भी नहीं पहुंच पाया था, उसने इस पार्वती के हृदय में बहुत अंदर तक चोट करते हुए उसे बींध दिया।

भावार्थ – सखी कहती हैं कि इन्द्र की आज्ञा से जब कामदेव ने, शिवजी पर बाण चलाया, वह शिवजी द्वारा कामदेव को भस्म कर देने से तथा उनकी असहनीय हुंकार के शब्द मात्र से लौट गया और उन तक उसका अग्रभाग भी नहीं पहुंच पाया लेकिन वही बाण इस पार्वती के हृदय में आ लगा और बहुत अंदर तक घुस गया अतः यह काम पीड़ित हो रही है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – विशीर्णमूर्तेः – विशीर्णा – मूर्तिः यस्य सः तस्य बहुब्रीहि वि+शृ + क्त प्रत्यय। पुष्पधन्वनः – पुष्पाणि एव धनुः यस्य स पुष्पधन्वा तस्य बहुब्रीहि। असह्यहुंकार निवर्तितः – असह्यहुंकारेण निवर्तितः। तृतीया तत्पुरुष। अक्षिणोत् – क्षिण् + श्नु + लङ् लकार।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

शिव पर प्रभाव डालने में असमर्थ कामदेव ने पार्वती को सताया अतः असंगति अलंकार है। अन्य के मत

में प्रत्यनीक या विरोध अलंकार है।

तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिका चन्दनधूसरालका।
न जातु बाला लभते स्म निवृत्तिं, तुषार–संघात शिलातलेष्वपि।।55।।

प्रसंग – पार्वती के काम–भाव की तीव्रता का वर्णन है –

अनुवाद – सखी कहती है कि उस दिन से लेकर अपने पिता के घर में अत्यधिक कामपीड़िता इसको जिसके कुंतल ललाट के चंदन से घूसर वर्ण के हो गये थे, वर्ण के समूह के शिलातलों पर भी शांति नहीं मिलती थी।

भावार्थ – पार्वती की सखी पार्वती की काम पीड़ित दशा का वर्णन करते हुए कहती है कि जिस दिन से कामदेव के बाण से ये घायल हुई है तभी से इसे शांति नहीं मिली है यद्यपि इसने उसके लिये ललाट पर चंदन का लेप लगाया, जिससे इसके बाल भी घूसर वर्ण के हो गये और इसने ताप शांति के लिये वर्ण की शिलाओं को आश्रय लिया तो भी इसका कामज्वर नहीं उतरा। उसी दिन से लेकर पिता के घर में इसको तनिक भी शांति नहीं मिली है।।55।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – उन्मदना – उत्कटः मदनः यस्याः सा (मध्यमपदलोपी बहुब्रीहि)। ललाटिका–ललाटस्य अलंकारः ललाटिका (षष्ठीतत्पुरुष)। ललाटिकाचन्दनधूसरालका – ललाटिकायाः चन्दनेन घूसराः अलकाः यस्या सा।

निर्वृत्तिम् – निर् + वृ + क्तिन्। लभते स्म – 'अपरोक्षे च' सूत्र से लभ् + लट्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – कारण के होते हुए भी कार्य के अभाव में विशेषोक्ति अलंकार है 'बर्फ की शिलाओं पर भी तापनिर्वृत्ति नहीं हो रही थी'। 'सति हेतौफलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।'

उत्तापवर्णे चरिते पिनाकिनः, सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका, वनान्तसंगीतसरवीररोदयत्।।56।।

प्रसंग – शिव के प्रति पार्वती के अगाध प्रेम एवं विरह व्यथा का वर्णन है –

अनुवाद – सखी ने फिर ब्रह्मचारी को बताया कि शिव के चरित्र के गान के क्रम में गला रूंध जाने से, अश्रुपूर्ण कण्ठ से निकलने वाले अस्पष्ट पदों के कारण इसका साथ देने वाली किन्नरराज की कन्याओं को इसने अनेक बार रूला दिया।

भावार्थ – जब यह शिव के त्रिपुर विजयादि चरित्रों को गाने के लिये वन में चली जाती थी और वहाँ गायन में सखी बनी हुई किन्नरराजा की कन्याएं इसका साथ देती थी उस समय प्रेम के कारण आंसुओं से गला रूंध जाने के कारण ये पदों को स्पष्ट नहीं कह पाती और उसकी इस दशा को देखकर वे कन्याएं भी अनेक बार रो पड़ती थी।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – पिनाकिन : – पिनाकः अस्यास्तीति तस्य पिनाक + इनि 'अतइनिठनौ' सूत्र से। उपात्तवर्णे – उपात्तः वर्णः यस्मिन् स तस्मिन्। उप + आ + दा + क्त। वनान्तसंगीतसख्यः – वनान्ते संगीतं तेन सख्यः। किन्नराणां राजा – किन्नरराजः षष्ठी तत्पुरुष।, 'राजाहः सखिभ्पष्टच्' सूत्र से रट् प्रत्यय। किन्नरराजस्य कन्यकाः – किन्नरराज – कन्यकाः षष्ठी तत्पुरुष। अरोदयत् – रूद् + णिच् + लड़् लकार।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – विनोद का क्रम प्रारम्भ करने पर विशेष विषाद प्राप्ति होने पर विषम अलंकार।

त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं, निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ! ब्रजसीत्यलक्ष्यवा, गसत्यकण्ठार्पित बाहुबन्धना।।57।।

प्रसंग – शिव के विरह में पार्वती का व्याकुलता का वर्णन है :–

अनुवाद – सखी फिर कहती है कि यह पार्वती रात्रि के तीन पहर बीत जाने पर चौथे पहर में क्षण भर आंखे बंदकर अचानक हे! शंकर – कहाँ जा रहे हो। ऐसे बड़बड़ाती हुई काल्पनिक व्यक्ति के गले में बांहे डालती हुई जाग उठती थी।

भावार्थ – अर्थात् इस पार्वती को रात भर नींद नहीं आती और चौथे पहर थोड़ी देर आंख लगती तो भी वह यह बड़बड़ाती हुई कि हे नीलकंठ कहां जाते हो? और हवा में किसी अनजाने काल्पनिक व्यक्ति के गले में भुजायें डालती हुई जग जाती थी और जागने के बाद सोचती कि मैंने क्या कह दिया और क्या कर डाला।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – त्रिभागशेषासु – त्रिभ्यः भागेभ्यः शेषासु। निमील्य – नि+मील् + क्त्वा + ल्यप्। नीलकण्ठः – नीलः कण्ठ यस्य सः बहुब्रीहि। अलक्ष्या – लक्षितुं योग्या लक्ष्या, न लक्ष्या अलक्ष्या (नञ् तत्पुरुष)। अलक्ष्या वाक् यस्याः सा अलक्ष्यवाक् (बहुब्रीहि)। असत्यकण्ठार्पितम् – असत्यः कण्ठः असत्यकण्ठः (कर्मधारय) असत्यकण्ठे अर्पितम् (सप्तमी तत्पुरुष) बाहुबन्धनं यया सा (बहुब्रीहि)। व्यबुध्यत – वि + बुध् + श्यन् + लड़्।

यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे, न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम्।
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया, रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः।।58।।

प्रसंङ्ग – पार्वती की विरहव्यथा की तीव्रता का वर्णन है –

अनुवाद – सखी ने ब्रह्मचारी को बताया कि यह भोली भाली पार्वती एकान्त में अपने हाथों से शिवजी का चित्र बनाकर उसे उलाहना देती रहती थी कि जब तुम्हें विद्वान लोग अन्तर्यामी कहते हैं तो तुम्हारे प्रेम में लगे हुए मुझ जैसे व्यक्ति के ह्रदय की बात आप क्यों नहीं जानते।

भावार्थ – हे शंकर! विद्वान् लोग आपको अन्तर्यामी कहते हैं सबके अर्थात् ह्रदय की बात जानने वाला कहते हैं तो फिर आप मेरे मन की बात क्यों नहीं जानते जिसमें आपके लिये प्रेम का भाव है इस प्रकार के उलाहने पार्वती अपने द्वारा बनाई गई शिव की तस्वीर को देती रहती थी। अर्थात् दिनोदिन पार्वती की दशा उन्माद की होती जा रही है।।58।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – सर्वगतः – सर्वं गतः द्वितीया तत्पुरुष द्वितीया श्रितातीत .... सूत्र से। भावे तिष्ठति इति भावस्थः तं भावस्थं (उपपद समास)। स्वस्य हस्तः स्वहस्तः षष्ठी तत्पुरुष स्वहस्तेन उल्लिखितः स्वहस्तोल्लिखितः (तृतीया तत्पुरुष)। चन्द्रशेखरः चन्द्रः शेखरे यस्य सः (बहुब्रीहि)। बुधैः – बुध् + क प्रत्यय इगुपघज्ञाप्रीकिरः कः सूत्र से। बुधैः में तृतीया अनुक्तकर्ता में। उपालभ्यत – उप + आ + लड़् + यक् / लड़्।

यदा च तस्याधिगमे जगत्पते, रपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।
तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरो, रियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम्।।59।।

प्रसंङ्ग – पार्वती की सखी उसकी तपस्या का कारण बताती है –

अनुवाद – सखी कहती है कि पार्वती को जब संसार के स्वामी को पाने का और कोई उपाय नहीं सूझा तो अपने पिता की आज्ञा लेकर वह हमारे साथ तपस्या करने हेतु तपोवन में आ गई।

भावार्थ – सखी ब्रह्मचारी से कहती है कि पार्वती ने संसार के स्वामी शिवजी को पाने के अनेक उपाय सोचे किंतु जब वह उन्हें नहीं पा सकी तो अंत में उसने तपस्या करने का ही निर्णय लिया और इसके लिये उसने पिता से आज्ञा ली और हमारे साथ इस वन में आ गई, क्योंकि शिवजी को पाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं रहा था।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – जगत्पतेः – जगतां पतिः षष्ठी तत्पुरुष तस्य। अधिगमे – अधि + गम् + अप्। विचिन्वती – वि + चि + शतृ + ङीप्। अनुज्ञया – अनु + ज्ञा + क प्रत्यय तृतीया विभक्ति। अस्माभिः – सह के योग में तृतीया विभक्ति। प्रपन्ना – प्र + पद् + कर्त्ता में क्त प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – परिकर – जगत्पति आदि विशेषण – साभिप्राय होने से।

द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं, फलं तपःसाक्षिसु दृष्टमेष्वपि।
न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते, मनोरथोऽस्याः शशिमौलि संश्रयः।।60।।

प्रसंङ्ग – पार्वती की कठोर तपस्या की अभी भी असफलता का वर्णन करती है –

अनुवाद – तब से लेकर तपस्या करती हुई इस पार्वती के कई वर्ष बीत गये। जो वृक्ष यहाँ आकर इसने अपने हाथों से लगाये, जो इसकी तपस्या के साक्षी हैं उनमें फल भी आ गये लेकिन चंद्रमौलिशिव सम्बन्धी जो मनोरथ रूपी बीज था वह तो अब तक अंकुरित भी दिखाई नहीं देता। शिवजी की प्राप्ति का कोई लक्षण अभी तक दिखाई नहीं देता।

भावार्थ – पार्वती को अपने मनोरथ की सिद्धि हेतु कठोर तप करते हुए इतना लम्बा समय बीत गया कि जिन वृक्षो को उसने अपने हाथ से लगाया था वे इतने बड़े हो गये कि उनमें फल भी लगने लगे लेकिन उसके मनोरथ का बीज तो ज्यों का त्यों पड़ा था उसमें अंकुर भी नहीं फूटे थे फल तो बहुत दूर की बात है अर्थात् शिव की प्राप्ति के लक्षण कहीं दूर–दूर तक दिखाई नहीं देते थे।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – कृतजन्मसु – कृतं जन्म येषां तेषु कृतजन्मसु। तपः – साक्षिषु तपसः साक्षिणः तेषु (षष्ठी तत्पुरुष)। शशि मौलिः – शशी मौलो यस्य सः– शशिमौलिः बहुब्रीहि। शशिमौलिः संश्रयः यस्य सः शशिमौलिसंश्रयः (बहुब्रीहि) संश्रय – सम् + श्रि + एरच् प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – अप्रस्तुतप्रशंसा, वृक्षफलोद्गम रूप कार्य के द्वारा पार्वती को तपस्या करते हुए महान् समय व्यतीत हो गया इसका प्रतिपादन किये जाने से।

3.3 सारांश

आपने श्लोक संख्या 31 से 60 तक ब्रह्मचारी वेशधारी शिव के द्वारा पार्वती के आश्रम में प्रवेश करने से लेकर सखी द्वारा पार्वती के विषय में की गई जिज्ञासाओं के प्रत्युत्तर के विषय में जाना। ब्रह्मचारी ने पार्वती जैसी कोमलांगी द्वारा ऐसी कठोर तपस्या करने का कारण पूछा क्योंकि तपस्या द्वारा प्रातव्य सभी वस्तुएं उसे पूर्व में ही प्राप्त थी। उच्च कुल में जन्म, अपूर्व सौन्दर्य, अपार सम्पत्ति और नवीन यौवन इन्हीं की प्राप्ति हेतु तप किया जाता है। उसके पिता हिमालय का प्रदेश तो स्वयं स्वर्ग ही है। न तो यह पति से तिरस्कृत होने योग्य है और न पिता के घर अपमानित हो सकती है। किसी की कुदृष्टि तो इसका स्पर्श भी नहीं कर सकती। और यदि पति की प्राप्ति हेतु कर रही है तो वह स्वयं ही इसको खोज लेगा। क्योंकि रत्न को ढूंढा जाता है। अंत में ब्रह्मचारी कहता है कि मुझे यह पता लग जाये कि इसका वरणीय वर कौन है और वह इसके योग्य है या नहीं तो में अपनी तपस्या का आधा भाग इसे दे दूंगा। तब पार्वती की सखी उत्तर देती है कि देवों के देव महादेव ही इसके अभीष्ट वर हैं जिनकी प्राप्ति के लिये कठोर तप करते हुए इसे इतना लम्बा समय हो गया कि इसके द्वारा अपने हाथ से लगाये गये वृक्षों में फल भी आ गये हैं। किन्तु इसके मनोरथ की पूर्ति कहीं दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती।

3.4 शब्दावली

1. त्रिवर्ग – धर्म, अर्थ एवं काम ये त्रिवर्ग कहलाते हैं।
2. पिनाकपाणि – पिनाक नामक धनुष को हाथ में धारण करने वाले अर्थात् शिव।
3. पुष्पधन्वा – फूलों के बाणों वाला अर्थात् कामदेव, अरविंद, अशोक, आम्रमंजरी, नवमल्लिका एवं नीलकमल ये पांच फूलों के बाण हैं।

3.5 बोध–प्रश्न

1. श्लोक संख्या 35 की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।
2. श्लोक संख्या 48 की सप्रसंग व्याख्या कीजिये एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी दीजिए।
3. श्लोक संख्या 55 की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।

3.6 उपयोगी ग्रन्थ

1. कुमारसंभवम् – पंचम सर्ग।
2. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – सत्यनारायण पांडेय एवं नानूराम व्यास ।
3. संस्कृत कवि दर्शन – भोलाशंकर व्यास।
4. साहित्यदर्पण – विश्वनाथ।
5. काव्यप्रकाश – मम्मट।

3.7 बोध – प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर इकाई 3.2 से देखें।

इकाई – 4

कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग)

की श्लोक संख्या 61 से 86 तक श्लोकों का हिन्दी में सप्रसंग अनुवाद, भावार्थ, व्याकरण–सम्बन्धी टिप्पणी, काव्यगत वैशिष्ट्य–छन्द, अलङ्कार आदि, सूक्ति–व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

आप इस चतुर्थ इकाई में महाकवि कालिदास विरचित कुमारसंभवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग के श्लोक 61 से लेकर 86 तक का अध्ययन करने जा रहे हैं।

आप जानेंगे कि किस प्रकार पार्वती ने स्वयं अपने मुख से अपने मनोरथ के विषय में बताया और किस प्रकार ब्रह्मचारी वेशधारी शिव ने उसकी घोर निंदा की।

शिव की निंदा सुनकर पार्वती क्रुद्ध हुई और तब ब्रह्मचारी ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया। इस प्रकार पार्वती को अपनी तपस्या का फल मिल गया।

4.1 प्रस्तावना

दिव्य पात्र शिव एवं पार्वती इस महाकाव्य के मुख्य नायक व नायिका हैं एवं उसका अंगी रस श्रृंगार है जो धर्म पुरुषार्थ से युक्त होने के कारण धर्मश्रृंगार माना जाता है। इसमें त्याग के साथ तपस्या और ऐश्वर्य के साथ प्रेम का अद्भुत सामंजस्य दिखाया गया है। जिससे यह संदेश मिलता है कि जीवन का परम् लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। शिव उसी के प्रतीक हैं जिन्हें बाह्य सौन्दर्य से नहीं अपितु तप और साधना से शुद्ध किये गये अन्तःकरण से ही पाया जा सकता है।

4.2 कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) श्लोक संख्या 61 से 86 तक श्लोकों की व्याख्या

न वेद्मि स प्रार्थित दुर्लभः कदा सखिभिः स्रोतरमीक्षितामिमाम्।
तपः कृषां अभ्युत्स्यते सखीं वृषेव सीतां तदौग्रहक्षताम्।।61।।

प्रसंग – अंत में निराश स्वर में पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी से कहा –

अनुवाद – मैं नहीं जानती कि प्रार्थना करने पर भी दुर्लभ वह महादेव तपस्या से अत्यन्त कृश एवं सखियों द्वारा रो–रोकर देखी जाती हुई इस पार्वती पर, अनावृष्टि से पीड़ित जोती हुई भूमि पर इन्द्र के समान कब अनुग्रह करेंगे।

भावार्थ – सखी कहती है कि मुझे नहीं पता कि मेरी इस सखी की हालत कब सुधरेगी? हमसे इसकी दुर्दशा देखी नहीं जाती है और हम इसे देखकर आंसू बहाते हैं तपस्या से ये कैसी दुर्बल हो गई है ? प्रार्थना करने पर भी वह शिव अभी तक दुर्लभ हैं। जैसे जोती हुई पृथ्वी की वर्षा न होने पर दुर्दशा हो जाती हैं जैसे मेघ वर्षा करके उस पर कृपा कर दें उसी प्रकार महादेव भी इसको मिल जायें। वे कब मिलेंगे मैं नहीं जानती।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – प्रार्थितदुर्लभः – प्रार्थितः च असौ दुर्लभ च (कर्मधारय)। तपः कृशाम् – तपसा कृशाम् (तृतीया त्त्पुरुष)। अस्त्रोत्तरम् – अस्त्राणि उत्तराणि यस्मिन् त्त् (बहुब्रीहि)। तदवग्रहः– तस्य अवग्रहः (षष्ठी तत्पुरुष) अवग्रह – अव + ग्रह् + अप् प्रत्यय। अभ्युपपत्स्यते – अभि + उप + पद् + लृट् लकार।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – पूर्णोपमा अलंकार

सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च।
उपमेय चोपमानं भवेद्वाच्यम्।

क्योंकि उसने पार्वती के ह्रदय को जानने के कारा उसके ह्रदय के उत्तम भाव को छिपाया नहीं था।

अगूढसद्भावमितीङ्गितज्ञया, निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया।
अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यंजितहर्षलक्षणः।।62।।

प्रसंग – सखी से सब कुछ जान लेने पर ब्रह्मचारी ने पार्वती से उसके ह्रदय की बात पूछी –

अनुवाद – जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले सुन्दर ब्रह्मचारी ने, जिसे ह्रदय की बात जानने वाली सखी ने बिना कुछ छिपाये सब कुछ बता दिया पार्वती से पूछा कि यह तुम्हारी सखी क्या मजाक कर रही है? सब कुछ जानने के बाद भी ब्रह्मचारी ने अपनी प्रसन्नता का चिन्ह प्रकट नहीं होने दिया।

भावार्थ – यद्यपि ब्रह्मचारी को पार्वती की सखी के मुख से पार्वती के मन की बात एवं सच्चाई पता लग गई फिर भी उसने अपनी प्रसन्नता को छिपा लिया और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले एवं सुंदर उसने सीधे पार्वती से ही प्रश्न किया कि कहीं तुम्हारी यह सखी परिहास तो नहीं कर रही है कि तुम महादेव को पति के रूप में पाना चाहती हो।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – इङ्गितज्ञया – इङ्गिंत जानाति इति इङ्गितज्ञा तया ज्ञा + क + टाप्। न गूढः – अगूढः नञ् त्त्पुरुष। गूढः – गूह + क्त प्रत्यय। निवेदित – नि + णिच् + विद् + क्त प्रत्यय। नैष्ठिकसुन्दरः – नैष्ठिकः च असौ सुन्दरश्च (कर्मधारय) नैष्ठिक – निष्ठा + ठन् प्रत्यय। अव्यंजितहर्षलक्षण :– न व्यंजितानि अव्यंजितानि (नञ् त्त्पुरुष) हर्षस्य लक्षणानि येन सः (बहुब्रीहि)। परिहासः – परि + हस् + घञ् प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ –

अलंकार – इङ्गितज्ञया विशेषण के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार।

उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः

अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ, सभर्पयन्ती स्फटिकाक्ष – मालिकाम्।
कथंचिदद्रेस्तनया मिताक्षंर, चिख्यवस्थापित वागभाषत्।।63।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी के अनेक प्रश्न पूछने एवं बार–बार प्रेरित करने पर पार्वती ने अपना –

अनुवाद – ब्रह्मचारी के पार्वती से पूछने पर अपना मौन तोड़ती हुई पार्वती ने कहा तब इसके बाद

हिमालय को पुत्री पार्वती ने स्फटिकमणि से बनी हुई जपमाला को कलियों के समान बनाई हुई अंगुलियों वाले हाथ के अग्र भाग में डाला और चिरकाल से धारण किये मौन व्रत को तोड़ती हुई किसी प्रकार सीमित अक्षरों में कहने लगी।

भावार्थ – पार्वती चिरकाल से मौन रहकर जप किया करती थी उसने अपनी उस स्फटिकमणियों की माला को उस हाथ में डाला जिसकी अंगुलियां कलियों के समान की हुई की और अब बड़ी कठिनाई से किसी तरह थोड़े से शब्दों में लज्जा का त्याग कर शिष्टतावश उत्तर देने लगी।।63।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – मुकुलीकृताड़्गुलौ – मुकुलीकृताः अड़्गुलयः यस्य सः तस्मिन् (बहुबिहि) मुकुलीकृता + च्वि अभूत्तद्भाव अर्थ में। अग्रहस्ते – अग्रश्च असौ हस्तः तस्मिन् (कर्मधारय) अक्षमालिका – अक्षाणां मालिका (षष्ठी त्त्पुरुष)। चिर – व्यवस्थापितवाक् – चिरेण व्यवस्थापिका वाग् यया सा बहुब्रीहि। व्यवस्थापित – वि + अव + णिच् + स्था + क्त प्रत्यय। समर्पयन्ती – सम् + अर्प् + शतृ प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – स्वभावोक्ति

स्वभावोक्ति रसौ चारु यथावद्बस्तुवर्णनम्

यथाश्रुतं वेदविदांवर! त्वया, जनोऽयमुच्चैः पदलड़्घनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं, मनोरथानामगतिर्न विद्यते।।64।।

प्रसंग – पार्वती ब्रह्मचारी से इस एक पद्य में ही अपने हृदय की इच्छा को प्रकट करते हुए कहती है–

अनुवाद – हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ। आपने मेरी सखी से जो सुना है वह सत्य ही है। यह व्यक्ति अर्थात् मैं जो शिव की पत्नी का महोच्च पद पाना चाहती हूँ और यह तपस्या भी उनकी प्राप्ति के साधन रूप में ही कर रही हूँ, क्योंकि इच्छाओं की कहीं शांति या समाप्ति नहीं होती।

भावार्थ – पार्वती के कहने का तात्पर्य यह है कि महादेवजी को पति रूप में प्राप्त करने की मेरी उच्च महत्वाकांक्षा है और यह तप भी उसकी प्राप्ति के लिये पर्याप्त नहीं है पर क्या करूँ मेरा अपने मन पर वश नहीं है तो बस उनको ही पाने के लिये लालायित है, क्योंकि मन की इच्छाओं की तो कोई सीमा नहीं होती और न ही वे शक्ति का विचार कर उत्पन्न होती हैं।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – वेदविदां – वेदं विदन्ति इति वेदविदः तेषां। विद् + क्विप् प्रत्यय। उच्चैः पदलड़्घनोत्सुकः उच्चैः पदलड़्घने उत्सुकः (सप्तमी त्त्पुरुष) लड़्घन – लंछि + ल्युट् प्रत्यय। अगतिः – न गतिः नञ् त्त्पुरुष, गति – गम् + क्तिन् प्रत्यय। विद्यते – विद् + श्यन् + लट्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – अर्थान्तरन्यास अलंकार है, मनोरथानांमगतिर्न विद्यते इस सामान्य से पार्वती के मनोरथ रूप विशेषण का समर्थन होने से।

सूक्ति की व्याख्या – मनोरथानामगतिर्न विद्यते – मन की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं होता। वे कभी शांत नहीं होती और न ही मन में इच्छा इस विचार से उत्पन्न होती है कि यह पूर्ण होगी या नहीं इसको पूरा करने की सामर्थ्य है या नहीं।

अथाह वर्णी विदितो महेश्वर, स्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्त्तसे।
अमड़्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं, तवानुकृतिं न च कर्तुमुत्सहे।।65।।

सप्रसंग – पार्वती के हृदय की शिव प्राप्ति की इच्छा जानकर ब्रह्मचारी कहता है –

अनुवाद – तब ब्रह्मचारी बोला मैं शिवजी को जानता हूँ और तू उसी को पाना चाहती है। वह अमाड़्गलिक वस्तुओं से प्रेम करने वाला है यह सोचकर मैं तुम्हारा अनुमोदन करने में उत्साहित नहीं हो रहा हूँ।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कथन का तात्पर्य है कि मैं शिवजी को अच्छी तरह से जानता हूँ वह श्मशाम की चिता और कपालादि जैसी – अशुभ वस्तुओं के सेवन का अनुरागी है। यह सब सोचते हुए मैं तेरे मनोरथ का समर्थन नहीं करता, तू ऐसे को पति क्यों बनाना चाह रही है इस प्रकार ब्रह्मचारी ने पार्वती से शिव की निंदा उसकी निष्ठा की परीक्षा लेने हेतु करनी प्रारम्भ की।।65।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – वर्णी – वर्ण अस्यास्तीति वर्ण + इनि। आह – ब्रू + लट् लकार। विदितः – विद् + क्त। महेश्वरः – महान् च असौ ईश्वरः (कर्मधारय)। तदर्थिनी – तस्य अर्थिनी – अर्थ + इति। अमड़्लाभ्यासरतिम् – न मड़्लम् अमड़्मलम् (नञ् त्त्पुरुष) अमड़्लानां अभ्यासः (षष्ठी त्त्पुरुष) अमड़्गलाभ्यासे रतिः यस्य सः (बहुब्रीहि)। विचिन्त्य – वि + चिन्त् + क्त्वा को ल्यप् आदेश।

उत्सहे – उद् + सह् + लट्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – काव्यलिंग अलंकार है अमंगलाभ्यास के अनुसरण में हेतु का प्रदर्शन करने से।

अवस्तुनिर्बन्धपरे! कथं नु ते, करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना, सहिष्यते त्तप्रथमावलम्बनम्।।66।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती को शिव की तुच्छता की ओर ध्यान दिलाता है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी कहता है कि हे पार्वती तू तुच्छ वस्तु में आग्रह कर रही है। विवाह के समय मंगलसूत्र धारण करने वाला तेरा यह हाथ कंगन के रूप में सर्प धारण करने वाले शिवजी के हाथ से प्रथम पाणि – ग्रहण को ही कैसे सहन करेगा।

भावार्थ – ब्रह्मचारी कहता है कि हे पार्वती तू निसार वस्तु को प्राप्त करने का आग्रह कर रही है। विवाह के समय जब तेरा हाथ शिवजी के हाथ में दिया जायेगा तो तेरे हाथ में मांगलिक धागा बंधा होगा और शिवजी के हाथ में सांप लिपटे होंगे। तब तू उस हाथ को कैसे सहन करेगी। इसलिये मेरा कहना है कि तू तुच्छ वस्तु को पाने का आग्रह क्यों कर रही है।।66।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – अवस्तुनिर्बन्धपरे – न वस्तु अवस्तु (नञ् त्त्पुरुष) अवस्तुनि निर्बन्धः (सप्तमी त्त्पुरुष) अवस्तुनिर्बन्धः परः यस्या सा– (बहुब्रीहि)। विवाहकौतुकं – विवाहस्यकौतुकं (षष्ठी त्त्पुरुष) आमुक्तं विवाहस्य कौतुकं यस्मिन् सः – आमुक्तविवाहकौतुकः। बलयीकृताहिना – अवलयः वलयः कृतः वलय + च्वि प्रत्यय अभूत्तद्भाव में। वलयीकृतः अहिः यस्मिन् तेन (बहुब्रीहि)। सहिष्यते – सह् + लृट्लकार

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – विषम अलंकार दो विरूप पदार्थों का मेल होने पर – **'विरूपयोः संघटना या च तद्विषमम् मत्तम्।**

त्वमेव तावत् परिचिन्तय स्वयं, कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं, राजाजिनं शोणितबिंदुवर्षि च।। 67।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी शिव के विकृत रूप का वर्णन करते हुए पार्वती को उसके सङ्कल्प से हटाने का प्रयत्न करता है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है – हे पार्वति! तू स्वयं ही अच्छी तरह से सोच ले कि क्या सुन्दर हंसों से चित्रित तेरी जैसी दुल्हन का रेशमी दुपट्टा और जिसमें से रक्त की बूंदे टपक रही हो ऐसा दूल्हे का हाथी का चमड़ा क्या इन दोनों वस्तुओं का कभी गठबंधन हो सकता है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी स्वयं पार्वती को झकझोरते हुए कहता है कि तुझे किसी ओर से पूछने की जरूरत नहीं है तू खुद ही सोच ले कि जब विवाहमण्डप में पुरोहित तुम दोनों का गठजोड़ करेंगे उस समय तुम दोनों के वस्त्र कैसे होंगे तू तो दुल्हन का सुन्दर रेशमी दुपट्टा पहने होगी, जिसमें सुन्दर कलहंस चित्रित होंगे और शिवजी वह गजचर्म ओढ़े होंगे जिसमें से खून की बूंदे टपक रही होंगी। इतने बेमेल वस्त्रों का गठजोड़ कैसे होगा जब विवाह के समय ही ऐसी बेमेल स्थिति होगी तो आगे क्या होगा।।67।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – तावत् – भानार्थवाची अव्यय, तद् + वतुप् प्रत्यय परिचिन्तय – परि + चिन्त् + लोट् लकार। कलहंस – लक्षणम् – कलहंसः लक्षणं यस्य त्त् (बहुब्रीहि), वधूदुकूलं – वध्वाः दुकूलं (षष्ठी त्त्पुरुष)। शोणित बिन्दुवर्षि – शोणितबिन्दून् वर्षति वर्ष + णिनि वर्षि। गजाजिनं – गजस्य अजिनं षष्ठी त्त्पुरुष। यदि – प्रश्नार्थ रूप है।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – विषम अलंकार दो विरूप पदार्थों का मेल दिखाने के कारण।

चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः, परेऽपि को नाम तवानुमन्यते।
अलक्तकाड्कानि पदानि पादयो, विंकीर्णकेशासु परेतभूमिषु।।68।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी शिव से विवाह के पश्चात् पार्वती की भयावह स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करता है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि विवाह के पश्चात् तुझे शिवजी के साथ शमशान भूमि में रहना होगा और वहां जो तेरी दशा होगी ऐसी तो तेरा शत्रु भी नहीं चाहेगा। हे पार्वती कोई तेरा शत्रु भी इस बात को स्वीकार नहीं करेगा कि सुन्दर राजभवन में बिखरे हुए पुष्प समूहों पर रखने योग्य तेरे चरण मृतपुरुषों के बिखरे बालों वाली शमशान भूमि को आलता के चिह्नों से चिह्नित करे।

भावार्थ – ब्रह्मचारी कहता है कि किसी तरह विवाहोत्सव की बेमेल वस्तुओं को तू सहन भी कर ले तो विवाहोपरान्त तो तुझे शिवजी के साथ शमशान में ही रहना होगा। राजकुमारी होकर भी तेरे कोमलचरण जो महलों में फूलों पर रखे जाते थे उन्हें मुर्दों के बिखरे बालों वाली भंयकर शमशान भूमि में तू रखे यह तो तेरा कोई शत्रु भी नहीं चाहेगा।।68।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः – चतुष्के पुष्पप्रकरः (सप्तमी त्त्पुरुष) चतुष्कपुष्पप्रकरे अवकीर्णयोः (सप्तमी त्त्पुरुष) प्रकर – प्र + कृ + अप्। अवकीर्ण – अव + कृ + क्त प्रत्यय। विकीर्णकेशासु – विकीर्णाः केशाः यासु तासु (बहुब्रीहि)। परेतभूमिषु – परेतानां भूमिषु (षष्ठी त्त्पुरुष) अनुमन्यते – अनु + मन् + श्यन् + लट्

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – पर्यायोक्त अलंकार – 'शमशान निवास की अनुमति नहीं दी जा सकती' यह अर्थ भड़्यन्तर से कथित है।

अयुक्तरूपं किमतः पंर वद, त्रिनेत्रवक्षःसुलभं तवापि यत्।
स्तनद्वयेऽस्मिन् हरिचन्दनाड्किते, पदं चिताभरमरजः करिष्यति।।69।।

सप्रसंग – ब्रह्मचारी शिवजी की और निंदा करता हुआ कहता है कि –

अनुवाद – हे पार्वती ! तू ही बता कि इससे अधिक अनुचित और क्या होगा कि त्रिनेत्रधारी महादेव के

वक्षःस्थल पर लगी हुई चिता की भस्म कुंमुम के योग्य तेरे स्तनों पर स्थान बनायेगी।

भावार्थ – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि मैं तो इससे अधिक और अनुचित कुछ भी नहीं समझता कि आलिंगन के समय त्रिनेत्रधारी शिव के वक्षस्थल पर लगी हुई चिता की भस्म तेरे चंदन लगाने योग्य स्तनों पर जगह बनाये। इससे अधिक अनमेल क्या हो सकता है। त्रिनेत्रधारी – होने से कुरूप तो वह है ही।।69।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – अयुक्तरूपम् न युक्तं अयुक्तं, अयुक्तं रूपं (कर्म धारय) त्रिनेत्रः – त्रीणि नेत्राणि यस्य सः (बहुब्रीहि) त्रिनेत्रस्य वक्षः त्रिनेत्रवक्षः (षष्ठी त्त्पुरुष) सुलभ – सू + लभ् + खल् प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – विषम

इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना, यदूढया वारणराजहार्यया।
विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया, महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति।।70।।

प्रसंग – शिव के साथ पार्वती के विवाह के पश्चात् उसकी हास्यापद स्थिति की ओर ध्यान खींचते हुए–

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि शिव से तेरा मिलन तो बाद में होगा पहले ही एक और परिहास की बात हो जायेगी जब तू उनके साथ बूढ़े बैल पर बैठ कर जायेगी। मिलन से पहले ही तेरा यह और ही परिहास हो जायेगा, जब शिव से विवाह के उपरान्त तुझे, जो गजराज पर बिठाई जाने योग्य है बूढ़े बैल पर बैठे सभ्य लोग देखेंगे तो तेरी हंसी उड़ायेंगे।

भावार्थ – ब्रह्मचारी के कथन का तात्पर्य है कि मिलन के समय जो अनमेल होगा वह तो बाद की बात है उससे पहले जब शिवजी तुझे बैल पर बिठाकर ले जायेंगे तो सभ्य लोग तुझे देखकर हसेंगे क्योंकि तू राजकुमारी होने से गजराज पर बैठकर जाने योग्य थी और यह उपहास तुझे कैसे सहन होगा।।70।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – वारणराजहार्यया – वारणानां राजा वारणराजः (षष्ठी त्त्पुरुष) वारणराजेन हार्यया (तृतीया त्त्पुरुष) हार्यया – हृञ् + ण्यत्। अधिष्ठितम् – अधि + स्था + क्त। वृद्धोक्षम् – वृद्धं उक्षाणं (कर्म धारय)। महाजनः महान् च असौ जनः (कर्मधारय) स्मेरमुख – स्मेरं मुखं यस्य सः स्मेरमुखः बहुब्रीहि।

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां, समागमप्रार्थना कपालिनः।
कला च सा कान्तिमयी कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकोमुदी।।71।।

प्रसंग – पार्वती एवं चांदनी की शिव–प्राप्ति की इच्छा से होने वाली दुर्दशा का ब्रह्मचारी वर्णन करता है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि शिवजी को पाने की इच्छा वाली चन्द्रमा की चांदनी और तुम दोनों ही दुर्दशा को प्राप्त हुए हो। हे पार्वती ! कपालधारी शिव को पाने की – इच्छा से इस समय चन्द्रमा की वह प्रसिद्ध कान्ति और इस संसार के नेत्रों को चांदनी के समान आनन्द देने वाली तुम दोनों ही शोचनीय दशा को प्राप्त हुए हो।

भावार्थ – महादेवजी जो कि नरमुंडो को धारण करने वाले हैं उनको पाने की चाह में पहले तो चन्द्रमा की चांदनी ही शोचनीय थी और अब शिव से विवाह करके तू भी उसके समान ही शोचनीय हो गई है। तू जो सारे संसार को चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान आनन्दित करती है। न तो चांदनी ही श्मशान वासी उस कपाली के योग्य थी और न ही तू, इसलिये लोग तुम दोनों के विषय में शोक करते हैं।।71।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – कपालिनः कपालः अस्यास्तीति कपाली तस्य कपाल + इनि। समागमप्रार्थनया – समागमस्य प्रार्थना तया, सम् + आ + गम् + अप् प्रत्यय – समागम। कान्तिमती – कान्ति + मतुप्।

नेत्रकौमुदी – नेत्रयोः कौमुदी (षष्ठी त्त्पुरुष) कौमुदी – कुमुद् + अण् प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – दीपक अलंकार, प्रस्तुत पार्वती और अप्रस्तुत चन्द्रकला का शोचनीयत्व रूप एक धर्म के प्रतिपादन करने से।

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता, दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते, तदस्ति किं व्यस्तमति त्रिलोचने।।72।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी पार्वती से कहता है कि वर में जो गुण देखें जाते हैं शिवजी में तो उनमें से एक भी नहीं है।

अनुवाद – हे बालमृग के समान नेत्रों वाली। वर में जो–जो गुण खोजे जाते हैं। उनमें से कोई एक भी उनमें पाया जाता है क्या? शरीर कुरूप है विकृत नेत्रों के कारण, जन्म का कोई ठिकाना नहीं, कब और कहाँ किससे उत्पन्न हुए। और धन का पता तो उनके नग्न रहने से ही चल जाता है।

भावार्थ – ब्रह्मचारी कहता है कि प्रायः वर में तीन बातें ही देखी जाती है, शारीरिक सौन्दर्य, उच्च वंश और धनसम्पत्ति। शिव के विषय में तो इनमें से एक भी दिखाई नहीं देती। विरूपाक्ष होने से वह सौन्दर्यहीन है, कुल वंश का कुछ अता पता नहीं, धनहीनता तो यहाँ तक है कि पहनने को वस्त्र भी नहीं। तो ऐसे गुणहीन वर की इच्छा तू त्याग दे, यही ब्रह्मचारी के कहने का तात्पर्य है।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – त्रिलोचने – त्रीणि लोचनानि यस्य सः तस्मिन् (बहुब्रीहि)। व्यस्तम् वि + असु + क्त प्रत्यय विरूपाक्षम् – विरूपाणि अक्षीणि यस्मिन् त्त् + (कर्मधारय) अलक्ष्यजन्मा – न लक्ष्यं अलक्ष्यं जन्म यस्य सः बहुब्रीहि तस्य भावः अलक्ष्यजन्मता जन्म + तल् भाव में। दिगम्बरत्वेन दिशः अम्बरं यस्य सः दिगम्बरः (बहुब्रीहि) तस्य भावः तेन।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – साभिप्राय विशेषण होने से परिकर अलंकार।

निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।
अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूप सत्क्रिया।।73।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी अब सीधे पार्वती को उसके मनोरथ को छोड़ देने के लिये कहता है –

अनुवाद – हे पार्वती! तुम इस बुरे विचार से अपने मन को हटा लो। उस प्रकार (अशुभलक्षणों वाला) वह कहाँ और कहाँ तुम शुभ लक्षणों वाली। सज्जन लोग कभी भी वेदों में कथित विधि द्वारा यज्ञ के स्तम्भ का संस्कार श्मशान में गड़े हुए खूंटे से नहीं करते हैं।

भावार्थ – ब्रह्मचारी पार्वती से स्पष्ट कहता है कि शिवजी को पाने का अमंगलकारी विचार छोड़ दे। तुझ शुभ लक्षणों वाली का उस अमंगलकारी से कोई मेल नहीं है। कोई समझदार व्यक्ति श्मशान में गड़े हुए खूंटे से वेदोक्त विधि से यज्ञ के खंभे का काम नहीं लेता। इसलिये मेरा विचार है शिव से तेरा समागम उचित नहीं है।।73।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – असदीप्सितात् – असद् ईप्सितम् (कर्मधारय) तस्मात् – वारणार्थानामीप्सितः सूत्र से अपदान में पंचमी विभक्ति। तद्विधः – सा विधा यस्य सः (बहुब्रीहि) श्मशानशूलस्य – श्मशाने शूलं तस्य (सप्तमी त्त्पुरुष) यूपसत्क्रिया – यूपस्य सत्क्रिया (षष्ठी त्त्पुरुष) पुण्यलक्षणा – पुण्यानि लक्षणानि यस्या सा (बहुब्रीहि)।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – विषम तथा दृष्टान्त। विरूप पदार्थों का मेल दिखाने से विषम और उपमानवाक्य और उपमेय वाक्य में बिम्बप्रतिबिम्वभाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।
विकुंचितभ्रूलतमाहिते तया विलोचने तिर्युगुपान्तलोहिते।।74।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी द्वारा की गई शिव की निन्दा सुनकर पार्वती के क्रोध का वर्णन किया गया है –

अनुवाद – ब्रह्मचारी के इस प्रकार शिव की निन्दा करने पर पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हो गई, जब ब्रह्मचारी ने इस प्रकार के प्रतिकूल वचन कहे वह पार्वती, जिसके अधर कांपने से क्रोध लक्षित हो रहा था अपनी भोंहे चढ़ाये लाल प्रान्त वाली आँखों से टेढ़ी देखने लगी।

भावार्थ – पार्वती के क्रोध की दशा का स्वाभाविक वर्णन है। पार्वती ने ब्रह्मचारी के मुख से शिवजी के ऐसी निंदा सुनी तो उसके होंठ क्रोध से कांपने लगे, आंखे लाल हो गई, भवें तन गई एवं उसकी ओर से दृष्टि हटाकर वह बगल में देखने लगी। वह शिवजी की निंदा सहन नहीं कर सकी और उसके क्रोध का भाव उसके मुख एवं हाव–भाव से झलकने लगा।।74।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – द्विजातौ – द्वे जाती यस्य सः तस्मिन् (बहुब्रीहि)। वादिनि – वद् + णिनि + सप्तमी विभक्ति प्रतिकूलं वदति इति तस्मिन् प्रतिकूलवादिनि। प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपा – प्रवेपमानः अध ारः प्रवेपमानाघर (कर्मधारय) प्रवेपमानाधरेण – लक्ष्यः कोपः यस्याः सा तया (बहुब्रीहि)। प्रवेपमान – प्र + वेपृ +शानच् प्रत्यय। उपान्तलोहिते – उपान्तेलोहिते (सप्तमी त्पुरुष) विकुंचित्तभ्रूलतम् –विकुंचिता भ्रूः एव लता यस्मिन् त्त् (बहुब्रीहि) क्रिया विशेषण है। अहिते – आ + धा + क्त प्रत्यय।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – स्वभावोक्ति – स्वाभावोक्ति रसौ चारू यथावद्वस्तुवर्णनम्

उवाच चैनं परमार्थतो हरं न वेत्सि नूंन यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।।75।।

प्रसंग – तब पार्वती ने ब्रह्मचारी को उत्तर देते हुए युक्ति पूर्वक उसके सभी तर्कों का खंडन किया। सर्वप्रथम् उसने जो कहा था कि मैं शिवजी को जानता हूँ इसके प्रत्युत्तर में पार्वती कहती है –

अनुवाद – पार्वती ब्रह्मचारी से बोली कि तुम निश्चित रूप से शिवजी को ठीक–ठीक नहीं जानते इसीलिये ऐसा कह रहे हो। प्रायः मूर्ख लोग अलौकिक एवं विलक्षण, समझ में न आने वाले महापुरुषों के चरित्रों की निदां किया ही करते हैं।

भावार्थ – ब्रह्मचारी ने कहा था 'विदितो महेश्वरः' उसी का खंडन करती हुई पार्वती कहती है कि निश्चित रूप से तू शिवजी को नहीं जानता यदि जानता तो ऐसे अनुचित दोषारोपण नहीं करता लेकिन शायद तेरा भी दोष नहीं है क्योंकि मूर्ख लोग महापुरुषों से द्वेष करते ही है उनका चरित्र तो अलौकिक और आसानी से समझ में आने वाला नहीं होता।।75।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – उवाच – ब्रू + लिट्। परमार्थतः परमः अर्थः तस्मात् परमार्थ + तसिल् प्रत्यय पंचमयास्तसिल् सूत्र से। अलोकसामान्यं – लोके सामान्यं (सप्तमी त्तपुरुष) न लोक सामान्यम् – अलोकसामान्यम् (नञ् त्तपुरुष)। अचिन्त्यहेतुकम् न चिन्त्यः अनिन्त्यः हेतुः यस्य त्त्। चिन्त + यत् प्रत्यय। हेतुकम् – हेतु + कप् प्रत्यय। महात्मनाम् – महान् आत्मा येषां ते महात्मानः तेषां (बहुब्रीहि)।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – अनुमान एवं अर्थान्तरन्यास

सूक्ति की व्याख्या – अलोकसामान्य .... महात्मनाम् – जो मूढ़ बुद्धि के लोग हैं वे महापुरुषों के चरित्रों में दोषान्वेषण करते हैं। उनके विलक्षण चरित्रों को वे समझ नहीं पाते और उनको न जानने के कारण वे उनसे द्वेष करते हैं।

विपत्प्रतीकारपरेणमङ्गलं निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।
जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः।।76।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी द्वारा शिव के अमांगलिक वस्तुओं से प्रेम करने के विषय में उसका खंडन करती हुई पार्वती कहती है –

अनुवाद – जिन व्यक्तियों को आने वाली विपत्तियों का नाश करना है अथवा जो सम्पत्ति की कामना वाले हैं उन्ही लोगों को मांगलिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। शिव जैसे – संसार की रक्षा करने वाले, कामनाओं से रहित व्यक्ति को तृष्णा से आत्मवृत्ति को दूषित करने वाली इन मांगलिक वस्तुओं से क्या प्रयोजन।

भावार्थ – इस संसार में लोग या तो आपत्तियों का नाश करने के लिये या धन सम्पत्ति पाने के लिये मांगलिक वस्तुओं का सेवन करते हैं। जो स्वयं संसार का रक्षक है उसे न तो विपत्ति का डर है न सम्पत्ति के नाश का भय। समस्त कामनाओं से रहित शिव का उन मांगलिक वस्तुओं से क्या लेना देना, जो तृष्णा से चित्त को दूषित करती हैं।।76।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – प्रतीकार – प्रति + कृ + घञ् प्रत्यय, विपत्प्रतीकारपरेण – विपदां प्रतीकारः विपत्प्रतीकारे परः तेन सप्तमी त्त्पुरुष। भूतिसमुत्सुकेन – भूतिषु समुत्सुकः तेन सप्तमी त्त्पुरुष। निषेव्यतें – नि + सेव् + यक् + लट्। जगच्छरण्यस्य – जगतां शरण्यः तस्य (षष्ठी त्त्पुरुष) शरण्यः – शरण + यत् तत्र साधुः सूत्र से। निराशिषः निर्गता आशीः यस्मात् तस्य (बहुब्रीहि)। आशोपहतात्मवृत्तिभिः– आशया उपहता आत्मनः वृत्तिः यैः तानि तैः (बहुब्रीहि)। एभिः– गम्यमान प्रयोजन क्रिया के प्रति तृतीया विभक्ति 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम्' वार्तिक से।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – साभिप्राय विशेषणों के कथन से परिकर एवं मंगलाभ्यास की अनावश्यकता का समर्थन करने से काव्यलिंग अलंकार हैं।

अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।।77।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी शिव के वस्त्रविहीन होने से जो उनके धनहीन होने की बात कहता है इसका खंडन करते हुए पार्वती कहती है–

अनुवाद – वह शिव निर्धन होते हुए भी सम्पत्तियों की उत्पत्ति का स्थान हैं, श्मशानवासी होने पर भी त्रैलोक्य के स्वामी हैं और भयानक आकृति वाले होने पर भी मंगलकारी कहे जाते हैं। वास्तव में तो शिव को जानने वाले हैं ही नहीं।

भावार्थ – पार्वती कहती है कि दिगम्बरत्व के कारण तुमने उन पर निर्धनता का तथा भंयकर आकृति वाला एवं श्मशानवासी होने का आरोप लगाया है तो मेरा कहना है कि शिव को वास्तविक रूप में जानने वाला कोई है ही नहीं। वे निर्धन होते हुए भी सम्पत्तियों के दाता हैं, श्मशानवासी होने पर भी तीनों लोकों के स्वामी हैं और नरमुंड –सर्प–चिताभस्म धारण करने से भयावह रूप होने पर भी सबके कल्याणकारी हैं। अतः मेरे वरणीय वर तो वे ही हैं।।77।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – अकिंचनः – न विद्यते किंचन यस्य सः (बहुब्रीहि) प्रभवः – प्र+भू+अप् प्रत्यय। पितृसद्मगोचरः– पितृसद्म गोचरः यस्य स (बहुब्रीहि)। त्रिलोकनाथः – त्रयाणां, लोकानां नाथः त्रिलोकनाथः (षष्ठी त्त्पुरुष)। भीमरूपः – भीमं रूपं यस्य सः (बहुब्रीहि)। उदीर्यते– उद्+ईर्+यक्+लट्। याथार्थ्यविदः – यथार्थस्य भावः याथार्थ्यम् यथार्थ + ष्यञ् प्रत्यय। याथार्थ्यं विदन्ति। विद् + क्विप् कर्ता अर्थ में विदः। पिनाकिनः – पिनाकः अस्यास्तीति तस्य पिनाक + इनि।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – विरोध अलंकार विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरूद्धत्वेन यद्वचः।

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः।।78।।

प्रसंग – पार्वती विश्वरूप शिव की दिव्यता का वर्णन करती है –

अनुवाद – पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है स्वयं विश्वरूप शिव के स्वरूप का निश्चित रूप से निर्धारण नहीं किया जा सकता। वे चाहे स्वर्णाभूषण पहने या सांप लपेटे रहें, रेशमी दुकूल ओढ़े या गजासुर का चर्म, कपाल धारण करें या चन्द्रमा का मुकुट उनके स्वरूप को निश्चित नहीं किया जा सकता।

भावार्थ – पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि जो तुमने शिवजी पर सर्प धारण करने, गजचर्म पहनने और कपालादि रखने का दोष लगाया है यह तुम्हारी नासमझी और मूर्खता है। सारा संसार ही जिसका स्वरूप है ऐसे शिव के ठीक–ठीक निश्चित रूप को सीमित करके कैसे बताया जा सकता है। वे विश्वमूर्ति इसीलिये तो कहलाते हैं यदि वे सर्प बांधते हैं तो आभूषणों से भी वे ही चमचमाते हैं, हाथी का चमड़ा ओढ़ते हैं तो रेशमी वस्त्र भी धारण करते हैं और यदि कपाल रखते हैं तो चन्द्रमौलि भी वे ही हैं। ऐसे अष्टमूर्ति शिव के स्वरूप का निश्चय कौन कर सकता है।।78।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – विश्वमूर्तेः – विश्वं मूर्तिः यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि)। अवधार्यते – अव + धृ + णिच् + यक् + लट्। विभूषणोद्मासि भास्+णिनि, विभूषणैः उद्भासते। पिनद्धभोगि–पिनद्धाः भोगिनः यस्मिन् त्त् (बहुब्रीहि)। पिनद्ध – अपि+णह्+क्त प्रत्यय। गजाजिनलम्बि – गजस्य अजिनं (षष्ठी त्त्पुरुष) गजाजिनं आलम्बते लम्ब् + णिनि प्रत्यय। दुकूलधारिदुकूलं धारयति, धारि – धृञ् + णिनि प्रत्यय। कपालि – कपालं अस्यास्तीति कपाल + इनि 'अत इनिठनौं' सूत्र से।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ

अलंकार – विश्वमूर्ति इस साभिप्राय विशेषण के कथन से परिकर अलंकार है।

तदङ्गसंसर्गमवाप्य कल्पते ध्रुवं चिताभस्मरजोविशुद्धये।
तथाहि नृत्यांभिनय क्रियाच्युतं विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम्।।79।।

प्रसंग – पार्वती शिव के शिवत्व रूप का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी के वचनों का खण्डन करती है –

अनुवाद – पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि तुमने शिवजी पर अपवित्र चिता की भस्म का आरोप लगाया यह तुम्हारा अज्ञान है। हे ब्रह्मचारी चिता की भस्म तो उनके शरीर के सम्पर्क से ही पवित्र हो जाती है इसलिये ताण्डव नृत्य करते समय चरणादि के संचालन से गिरी हुई भस्म को स्वर्ग के देवता अपने मस्तक से लगाते हैं।

भावार्थ – पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि यह तुम्हारी नितान्त ही नासमझी है कि तुम चिता की भस्म अपने शरीर पर लगने से शिवजी को दोषयुक्त मान रहे हो। वह चिता की अपवित्र भस्म शिवजी के शरीर पर लग कर स्वयं पवित्र हो जाती है तभी तो जब शिव ताण्डव नृत्य करते समय भावप्रदर्शन करते हैं अर्थात् चरण संचालनादि करते हैं उस समय जो भस्म उनके शरीर से गिरती है उसे स्वर्ग के सभी देवता

अपने मस्तक पर धारण करते हैं। ऐसे महान् शिव को ही मैं पति रूप में प्राप्त करना चाहती हूँ।।79।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – चिताभस्मरजः – चितायाः भस्म चिताभस्म एव रजः कर्मधारय। तदङ्गसंसर्गम् – तस्य अंगं–तदङ्.गम् (षष्ठी तत्पुरुष) तदङ्.गस्य संसर्गः तं षष्ठी तत्पुरुष। अवाप्य– अव्+आप्+क्त्वा को ल्यप्। विशुद्धये में कल्पते क्रिया के अलम् अर्थ के कारण चतुर्थी विभक्ति है। 'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाडलंवषड्योगाच्च' से। नृत्यामिनयक्रियाच्युतम् – नृत्याभिनयक्रियायां च्युतं (सप्तमी तत्पुरुष)। अम्बरौकसाम्– अम्बरं ओकः येषां ते तेषाम् (बहुब्रीहि)

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – उल्लास। शिव के शरीर के स्पर्श से चिताभस्म के पवित्रता गुण की प्राप्ति होने से उल्लास अलंकार है।

असम्पदस्तस्य वृषेण गच्छतः, प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।
करोति पादावुपगम्य मौलिना, विनिद्रमन्दाररजोऽरुणाङ्गुली।।80।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी ने पार्वती के शिव से विवाह होने पर जो परिहास की बात कही उसका खंडन करती हुई पार्वती कहती है –

अनुवाद – शिवजी भले ही निर्धन और बूढ़े बैल की सवारी करने वाले हैं किंतु मदस्त्रावी दिग्गज ऐरावत जिसका वाहन है ऐसा इन्द्र भी शिव के पैरों को सिर से प्रणाम करता है जिससे उसके मस्तक के खिले हुए मंदार के फूलों का रंग शिवजी के चरणों को लाल कर देता है।

भावार्थ – पार्वती कहती है कि हे ब्रह्मचारी शिव जी दिगम्बर होने से चाहे निर्धन हैं और बूढ़े बैल की सवारी करते हैं किंतु मदमस्त ऐरावत की सवारी करने वाला इन्द्र भी जब उन्हें देखता है तो हाथी से उतरकर उनके चरणों पर अपना मस्तक रख देता है जिससे शिवजी के चरण उसके मस्तक के खिले हुए मंदार पुष्पों की रज से लाल हो जाते हैं। इन्द्रादि देवताओं से पूजे गये शिव जैसे महान देव से मेरे विवाह में कोई दोष नहीं है।।80।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः – प्रभिन्नदिग्वारणः वाहनं यस्य सः बहुब्रीहि। उपगम्य– उप + गम् + क्त्वा को ल्यप् आदेश। असम्पदः – न विद्यते सम्पद् यस्य तस्य (बहुब्रीहि)। गच्छतः–गम्+शतृ– षष्ठी विभक्ति। विनिद्रमन्दररजोरूणाङ्.गुली – विनिद्राणि मन्दररजांसि (कर्मधारय), विनिद्रमन्दररजोभिः अरूणाः अंगुलयः ययोः तौ (बहुब्रीहि)।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – पर्यायोक्त 'इन्द्र शिवजी को प्रणाम करता है' यह भङ्.ग्यन्तर से कहा गया है – **पर्यायोक्तं यदा भङ्गया गम्यमेवाभिधीयते।**

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना, त्वयैकमीशं प्रति साधु–भाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपिकारणं, कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति।।81।।

प्रसंग – ब्रह्मचारी द्वारा निरूपित शिवनिन्दा में से अलक्ष्यजन्मा विशेषता का वर्णन करते हुए –

अनुवाद – पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि यद्यपि तुम शिवजी के दोष गिनाने में पटु हो फिर भी तुमने एक बात तो सही कह ही दी। हे गिरे हुए स्वभाव वाले ब्रह्मचारी शिवजी की बुराई कहने की इच्छा वाले होने पर भी तुमने उनके लिये एक अच्छी बात कह दी। तुमने उन्हें अलक्ष्यजन्मा कहा तो जो शिव स्वयं ब्रह्मा की भी उत्पत्ति का कारण हैं उनके जन्म के विषय में कौन जान सकता है?

भावार्थ – पार्वती कहती है कि यद्यपि तुम नीचे स्वभाव के हो तुमने शिवजी के दोष कहने में कहीं कमी

नहीं रखी फिर भी तुम्हारे मुँह से उनके विषय में एक सच्ची बात निकल ही गई। सारे संसार की सृष्टि करने वाले स्वयं भू ब्रह्मा की उत्पत्ति का कारण भी जिन शिव को माना जाता है उनके जन्म को कौन जान सकता है। वह ज्ञातजन्मा कैसे हो सकते हैं। दोषदर्शी होते हुए भी तुमने उनके माहात्म्य के विषय में कह ही दिया। वे अनादि और नित्य हैं उनके जन्म के विषय में जानने की शक्ति किसमें है?।।81।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – च्युतात्मना – च्युतः आत्मा यस्य सः तेन (बहुब्रीहि) विवक्षता – वच् + सन् + शतृ तृतीया विभक्ति। ईशं प्रति – प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि'। भाषितम् – भाष् + क्त प्रत्यय। आत्मभुवः – आत्मना भवति इति आत्मभूः तस्य। लक्ष्यप्रभवः – लक्ष्यः प्रभवः यस्य सः (बहुब्रीहि)।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – असङ्गति। दोष कहने वाले ब्रह्मचारी के उससे विरूद्ध अच्छी बात कह देने से।

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तार्वदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनमीक्षते।।82।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में पार्वती ब्रह्मचारी को पूर्णतया मुखमुद्रण करते हुए –

अनुवाद – पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि मैं अब तुझ से आगे बहस में नहीं पड़ता चाहती, तू जैसा सोचना चाहे वैसा सोच। तुझ से विवाद करना व्यर्थ है, तूने जैसा सुना है वैसा ही वह रहे किंतु मेरा मन तो उन शिव के प्रेम भाव के रस से दृढ़ता को प्राप्त कर चुका है क्योंकि स्वेच्छापूर्वक काम करने वाला लोक निंदा की परवाह नहीं करता।

भावार्थ – पार्वती कहती है कि मैं तेरे जैसे हठी से और बहस करना नहीं चाहती। मैं तेरे कहने से उनकी प्राप्ति का विचार छोड़ने वाली नहीं हूँ, तूने जैसा भी सुना है तू वैसा ही मान। मेरा मन तो उनके प्रणय रस में एक रस होकर बिंध गया है और यदि इससे मेरी लोक निंदा भी होती है तो हो क्योंकि स्वेच्छाचारी अर्थात् अपने मन के अनुसार चलने वाले लोकापवाद की भी परवाह नहीं करते।।82।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – विवादेन – अलं के योग में गम्यमान क्रिया का करणत्व होने से तृतीया विभक्ति। सः– कर्म में प्रथमा। त्वया – श्रुतः क्रिया का कर्ता होने से तृतीया। भावैकरसं – भावः एव एकः रसः यस्य तद् (बहुब्रहि) कामवृत्ति – कामः एव वृत्तिः यस्य सः बहुब्रीहि। वचनीयम् – वच् + अनीयर्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – अप्रस्तुत प्रशंसा

सूक्ति की व्याख्या – न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते – जो व्यक्ति स्वेच्छाचारी हैं अर्थात् अपने मन के अनुसार चलते हैं, जिनकी इच्छाशक्ति दृढ़ है, वे लोकनिंदा की परवाह नहीं करते। वे जिसे उचित समझते हैं वही करते हैं, लोग चाहे कुछ भी कहें। वे इस बात पर विचार नहीं करते कि लोगों में इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी।

निवार्यतामालि! किमव्ययं बहुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।।83।।

प्रसंग – पार्वती अपनी सखी से कहती है कि अब इस ब्रह्मचारी को आगे बोलने से रोको। मैं शिव की और निंदा सुनकर पाप की भागी नहीं बनना चाहती।

अनुवाद – हे सखि! इस ब्रह्मचारी के होंठ फड़क रहे हैं अतः यह फिर कुछ कहना चाह रहा है, इसे रोको क्योंकि जो महान् लोगों की निंदा करता है न केवल वही दोषी है बल्कि उसकी बात को जो सुनता

है वह भी पाप का भागीदार बनता है।

भावार्थ – पार्वती अपनी सखि को उस ब्रह्मचारी को बोलने से रोकने लिये कहती है कि इसके होंठ फड़फड़ाने से ऐसा लगता है कि यह फिर कुछ कहना चाहता है। यह बोलना प्रारम्भ करे इससे पहले ही इसको यहां से हटा दो, क्योंकि जो महापुरुषों के प्रति अपशब्द बोलता है वह तो पापी है ही किंतु उसको सुनने वाला भी पाप का भागी बन जाता है।।83।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – स्फुरितोत्तराधरः – स्फुरितः उत्तरः अधरः यस्य सः (बहुब्रीहि)। अयं बटुः – निवार्यताम् क्रिया के कर्म में प्रथमा। नि + वार् + लोट कर्मप्रक्रिया में। विवक्षुः– वक्तुं इच्छुः ब्रू + सन् + उः सनाशंसभिक्ष उः सूत्र से उ प्रत्यय। तस्मात् – अपादान में पंचमी आख्यातोपयोगे सूत्र से।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – काव्यलिंग एवं अनुमान

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः।।84।।

प्रसंग – पार्वती ब्रह्मचारी से आगे संवाद नहीं करना चाहती अतः उसके वहाँ से जाने की इच्छा करने पर शिव अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं –

अनुवाद – यह कहकर कि मैं ही यहां से चली जाती हूँ जब पार्वती जाने लगी तो शिवजी ने अपना रूप प्रकट कर दिया। या मैं ही इस स्थान से चली जाती है ऐसा कहती हुई जैसे ही पार्वती जाने लगी उसके स्तनों से वल्कल वस्त्र खिसक गया और तब बैल के चिन्ह वाली ध्वजा वाले शिव ने अपना असली रूप प्रकट करते हुए मुस्कुराकर पार्वती को पकड़ लिया।

भावार्थ – पार्वती ने अपनी सखी से कहा कि यह ढीठ पता नहीं यहां से हटे या नहीं इससे तो अच्छा है मैं ही यहाँ से चली जाउं। हड़बड़ी में जाने को उद्यत पार्वती का वल्कल वस्त्र स्तनों पर से खिसक गया। उसी समय ब्रह्मचारी के छद्मवेश को छोड़कर पार्वती के परीक्षा में खरे उतरने पर शिवजी ने अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और उसे जाने से रोकने के लिये मुस्कुराते हुए पकड़ लिया। वे शिव, जिनकी ध्वजा में बैल का चिन्ह है।।84।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – इतः – इदम् + तसिल् प्रत्यय। वादिनी – वद् + णिनि, कर्ता अर्थ में। स्तनभिन्नवल्कला – स्तनाभ्यां भिन्नं वल्कलं यस्या सा (बहुब्रीहि)। वृषराजकेतनः–वृषराजः केतने यस्य सः (बहुब्रीहि)। आस्थाय – आ + स्था + ल्यप्। समाललम्बे – सम् + आ + लम्ब् + लिट्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वंशस्थ।

अलंकार – समुच्चय। पार्वती का प्रस्थान एवं शिव का उसको पकड़ने का एक साथ कथन होने से।

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।।85।।

प्रसंग – शिव को सहसा अपने सामने देखकर पार्वती की जो दशा हुई उसका अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन इस पद्य में किया गया है।

अनुवाद – उस (अपने प्रियतम को) को देखकर कांपती हुई एवं पसीने से लथपथ पार्वती आगे रखने के लिये पैर को उठाये हुए न तो जा सकी और न ही ठहर सकी, मार्ग में पहाड़ के आ जाने से अवरूद्ध गति वाली नदी के समान।

भावार्थ – सहसा प्रकट हुए अपने प्रियतम को सामने पाकर हिमालय की पुत्री पार्वती स्तंभित हो गई उसका

पैर जाने के लिये उठा का उठा ही रह गया। वह कांपने लगी और पसीने से उसकी देह और सुंदर दिखाई देने लगी। वह न तो आगे बढ़ सकी और न ही स्थिर रह सकी जैसे कोई नदी मार्ग में पर्वत के आ जाने से न तो रूक सकती है और न आगे जा सकती है वैसे ही दशा पार्वती की हो गई। ।85।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – वीक्ष्य – वि + ईक्ष् + क्त्वा–ल्यप्। वेपथुमती– वेपथुः अस्याः इति वेपथुमती। दुवेपृ + अथुच् प्रत्यय + मतुप् + ङीप्। निक्षेपणाय – नि + क्षिप् + ल्युट् तादर्थ्य में चतुर्थी। उद्वहन्ती – उद् + वह् + शतृ + ङीप्। ययौ – या + लिट्। तस्थौ – स्था + लिट्।

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वसंततिलका। अंतिम दो पद्य वसन्ततिलका छंद में है। लक्षण – उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

अलंकार – यह पद्य उपमा अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है साथ ही संभोग श्रृंगार का सरस परिपाक इसमें पाया गया है। आलम्बन पार्वती के स्वेद, कम्पन तथा स्तब्धता इन सात्विक भावों का सरस वर्णन है।

अद्यप्रभृत्यवनताङ्ग। तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमोलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज क्लेशः फलेन दि पुनर्नवतां विधत्ते।।86।।

प्रसंग – शिव ने पार्वती से अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि तुमने अपनी तपस्या से मेरा हृदय वश में कर लिया है।

अनुवाद – हे विनम्र अंगों वाली पार्वती। आज से अब मैं तुम्हारी तपस्या द्वारा खरीदा गया तुम्हारा दास हूँ। शिवजी के ऐसा कहने पर पार्वती ने तपस्या के सारे कष्ट को त्याग दिया। क्योंकि फल प्राप्ति होने पर कष्ट दूर होकर ताजगी प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ – जब शिवजी ने कहा कि हे पार्वती तुम अपने प्रेम की परीक्षा में खरी उतरी हो मैं आज से तुम्हारी तपस्या के बल से खरीदा गया तुम्हारा अनुचर बन गया हूं अब तुम जैसा चाहोगी वैसा ही होगा। शिव के मुंह से यह सुनकर पार्वती की तपस्या जनक थकावट दूर हो गई क्योंकि जब वह फल मिल जाता है जिसके लिये श्रम किया गया था तो फिर से नई ताजगी आ जाती है।।86।।

व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ – अवनताङ्गी – अवनतं अङ्गं यस्या सा (बहुब्रीहि) चन्द्रमौलौ चन्द्रः मौलौ यस्य सः तस्मिन्। नवताम् – नव + तल् प्रत्यय। विधत्ते – वि + धा + लट्

काव्यगत वैशिष्ट्य –

छंद – वसन्ततिलका।

अलंकार – अर्थान्तन्यास।

सूक्ति की व्याख्या – क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते – मनुष्य जिस फल की प्राप्ति के लिये अनेक कष्ट उठाता है, परिश्रम करता है जब वह फल उसे प्राप्त हो जाता है तो वह सारे कष्ट भूल जाता है और फिर से तरोताजा हो जाता है।

4.3 सारांश

आपने कुमारसंभवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग के श्लोक 61 से अंत तक का अध्ययन किया। आपने जाना कि किस प्रकार ब्रह्मचारी द्वारा शिव की निंदा के एक–एक तर्क का पार्वती ने अपनी अकाट्य युक्तियों से प्रत्युत्तर दिया। जिनसे अपने वरणीय वर महादेव के प्रति उसकी एक निष्ठा और प्रणय की गहनता का परिचय मिलता है। पार्वती के परीक्षा में खरे उतरने पर शिवजी ने प्रसन्न होकर अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया और पार्वती के तपस्या जनित श्रम को हर लिया। आपने जाना कि महाकाव्य में सर्गान्त में छंद परिवर्तन आवश्यक है।

4.4 शब्दावली

1. विश्वमूर्ति – शिव की आठ मूर्तिया हैं – सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, वायु, आकाश, यजमान, अग्नि और जल।
2. नैष्ठिक – जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला।
3. पिनाकी – पिनाक नामक धनुष धारण करने वाला अर्थात् शिव।

4.5 बोध प्रश्न

1. श्लोक संख्या 65 की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।
2. श्लोक संख्या 73 की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।
3. श्लोक संख्या 85 की सप्रसंग व्याख्या कीजिये।
4. श्लोक संख्या 80 की सप्रसंग व्याख्या कीजिए तथा व्याकरणात्मक टिप्पणी भी दीजिए।

4.6 उपयोगी ग्रन्थ

1. कुमारसंभवम् – पंचम सर्ग
2. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – सत्यनारायण पांडेय एवं नानूराम व्यास
3. संस्कृत कवि दर्शन – भोलाशंकर व्यास
4. साहित्यदर्पण – विश्वनाथ
5. काव्यप्रकाश – मम्मट
6. काव्यदीपिका – अष्टम शिखा

4.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर इकाई 4.2 से देखें।